(सचित्र कविता-संग्रह)

रचयिता

श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिंद

प्रकाशक

प्रकाशक—श्रीप्रवासीलाल वर्मा, मालवीय
हिन्दी-साहित्य-मंडल, बनारस सिटी

प्रथम संस्करण १०००

मार्च, १९४० ई०

मूल्य २)

मुद्रक—ना० रा० सोमण
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटी

उ प हा र
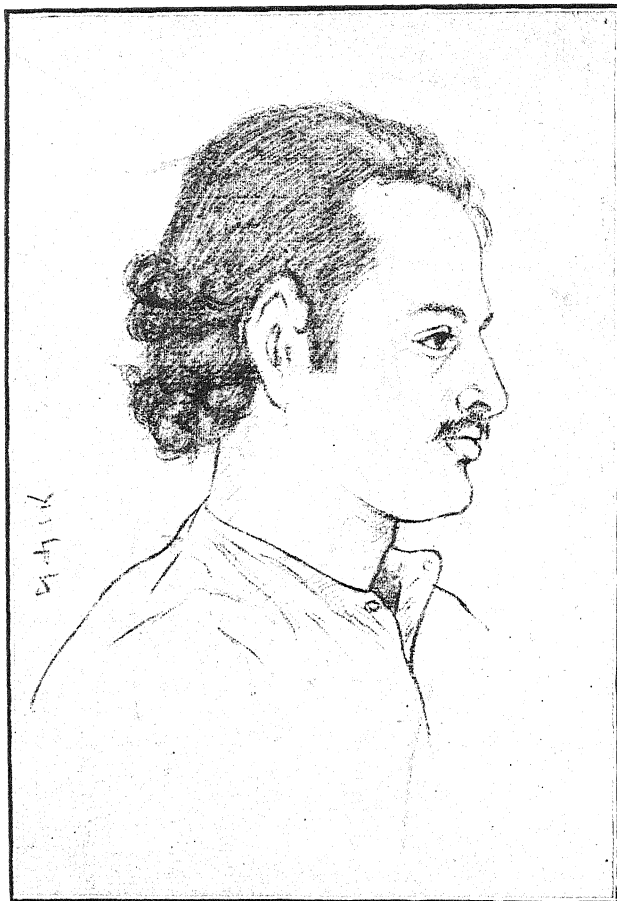
जीवन-संगीत

'जीवन-संगीत' के लेखक श्री मिलिंद (सन् '२९)

(आंध्र - चित्रकार श्री टी० केशवराव - कृत रेखांकन से)

प्राक्कथन

इस पुस्तक में, सन् १९२२ से १९३६ ई० तक, पिछले पंद्रह
में लिखी गई मेरी तीन सौ के लगभग कविताओं में से चुनी
सौ कविताएँ संगृहीत हैं। चयन मैंने स्वयं किया है।

सन् २९ में जब कुछ प्रकाशकों ने मेरा कविता-संग्रह प्रकाशित
की इच्छा प्रकट की थी, तब मैंने उस समय तक की
ाओं में से कुछ चुनकर एक संग्रह तैयार किया था और
नाम रखा था—'पँखुड़ियाँ'। किंतु, मेरे एक श्रमजीवी
त्र की अपनी प्रकाशन-योजना के बीच में आ जाने के कारण
स समय प्रकाशित न हो सका। उन्होंने भविष्य में स्वयं
तकमाला प्रकाशित करने की इच्छा प्रदर्शित की और मैंने
समें उसे संमिलित कराने का वचन दे दिया।

मित्र, कवि से प्रकाशक बने तो सही, पर उन्हें उस
ा में कई वर्ष लग गए और अपनी लंबी साधना के अंत
ं यह अनुभव किया कि उनका वह कल्प प्रायः असफल

रहा। वह बहुत यत्न करने पर भी और हार्दिक इच्छा रखने पर भी उस संग्रह के प्रकाशन के पूरे साधन नहीं जुटा सके और मैं उनसे वचन-बद्ध होने के कारण इस बीच उसे कहीं से प्रकाशित न करा सका।

इस प्रकार संयोगवश उसके प्रकाशन की योजना अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गई। पर, मेरा हृदय मौन कैसे रह सकता था? मैंने इस बीच पचासों नई कविताएँ लिखीं और उनमें से कई चुनकर उसी संग्रह में संमिलित भी कर दीं।

सन् १९३६ के अंत में मैंने जब यह देखा कि इस संग्रह का आकार सन् १९२९ के उस प्रथम चयन से बढ़कर लगभग दूना हो गया है, तब मैंने इसे संपूर्ण करके अपने उक्त मित्र के अच्छे दिनों की प्रतीक्षा में सुरक्षित रख दिया।

इधर अपने जीवन-संघर्ष में पड़कर धीरे-धीरे एक प्रकार से मैं इसके प्रकाशन की बात कुछ-कुछ भूलने-सा लगा और मेरे वह मित्र तो निरंतर बढ़नेवाली मुसीबतों के चक्कर में कुछ ऐसे फँसे कि निकलना असंभव नज़र आने लगा। फलतः, मुझे अपनी पहली पुस्तक 'प्रताप-प्रतिज्ञा' के प्रकाशन के बाद पूरे दस वर्षों तक इस दूसरी पुस्तक को लेकर पाठकों के संमुख उपस्थित होने का अवसर नहीं मिला।

अचानक एक दिन मुझे हिंदी-साहित्य-मंडल, काशी के संचालक

भाई प्रवासीलालजी वर्मा मालवीय का पत्र मिला कि वह मेरा कविता-संग्रह प्रकाशित करना चाहते हैं। मैं स्वतंत्र न था। अतः, मैंने उनका वह प्रस्ताव अपने पूर्वोक्त कवि-मित्र के पास भेज दिया।

मुझे प्रसन्नता है कि अंत में उन्होंने मुझे अपने वचन-बंधन से मुक्त कर दिया और आज यह मेरी दूसरी तथा प्रियतर रचना मेरे घर के कोने से निकल कर हिंदी-संसार के खुले आँगन में जा रही है। इसके प्रकाशक वर्माजी ने इसे अपने यश और अनुभव के अनुरूप ही मुद्रण और प्रकाशन का सौंदर्य देने का भी प्रयत्न किया है।

यद्यपि इसमें कविताएँ सन् १९३६ तक की ही हैं, पर उनका संशोधन सन् १९३९ के अंत में हो चुका है। इस संशोधन में मैंने इसकी कई कविताओं का रूप कुछ-कुछ बदल दिया है। कुछ कविताओं के शीर्षक भी परिवर्तित कर दिए हैं।

इसके आकार तथा भावनाओं के विस्तार तथा परिवर्तन को देखकर मैंने अब इसका नाम भी बदल कर 'जीवन-संगीत' कर देना उचित समझा है।

मैं यह छिपाना नहीं चाहता कि अपने इस 'जीवन-संगीत' से मैं संतुष्ट हूँ और यह भी स्वाभाविक ही है कि मैं अपने पाठकों से भी यह आशा रखूँ कि वे भी इससे संतोष प्राप्त करेंगे।

यह आशा रखने का अधिकार मुझे और किसी ने नहीं, उन्हीं ने मेरी प्रथम कृति 'प्रताप-प्रतिज्ञा' का अत्यधिक आदर करके दिया है।

यदि मुझे संकोच है तो केवल इस बात का कि इसके सर्व-प्रथम विज्ञापन और प्रकाशन के बीच में समय का बहुत लंबा अंतर पड़ गया। मेरे पाठकों को इसके लिए जो लंबी प्रतीक्षा करनी पड़ी, उसके लिए, निर्दोष होते हुए भी, मैं उनके आगे लज्जित हूँ। अब मैं उन्हें यह विश्वास अवश्य दिलाता हूँ कि भविष्य में मैं उनकी सेवा में थोड़े-थोड़े समय के अन्तर ही से नई-नई कृतियाँ लेकर उपस्थित होते रहने का यत्न करूँगा।

प्रस्तुत संग्रह की अधिकांश कविताएँ सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हो चुकी हैं, पर लगभग एक-तिहाई कविताएँ ऐसी हैं, जो इस संग्रह के पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुई हैं। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि वही मुझे प्रियतर भी हैं। इस संग्रह के पाठकों के लिए ही मैं उन्हें, संपादक-मित्रों के तकाजों और नाराजियों के बीच भी, कृपण के धन की भाँति, अभी तक छिपाए रहा हूँ।

प्रत्येक कविता के रचना-काल का ठीक-ठीक हिसाब मैं न रख सका; इसलिए उस क्रम से इन्हें न लगाया जा सका। साथ ही मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि एक ही विषय और एक ही ढंग

की कविताओं के लिए वह क्रम जितना उपयुक्त रहता है, विविध विषयों की कविताओं के लिए उतना नहीं। अतः, विषय-क्रम ही से इन कविताओं को पाँच भागों में बाँट दिया गया है। मैं समझता हूँ कि इससे विभिन्न रुचियों के पाठकों को अपने योग्य कविताएँ पाने में सरलता होगी। इस विषय में इतिहास-रसिकों की अपेक्षा कविता-प्रेमियों का ध्यान रखना मुझे अधिक आवश्यक प्रतीत हुआ। अस्तु।

मुझे विवश होकर काव्यमय, विवेचनापूर्ण और विस्तृत भूमिका लिखने की पुरानी परिपाटी तोड़नी पड़ रही है। इन पंक्तियों को लिखते हुए न तो मैं अपने पास उतना समय और वैसी मनःस्थिति ही पाता हूँ और न मैं इस प्रकार इस पुस्तक का कलेवर और कलेवर के साथ-साथ मूल्य बढ़ाने ही का इच्छुक हूँ। सीधे-सादे थोड़े-से शब्दों में अपने हृदय की कुछ बातें और इस संग्रह की कहानी पाठकों के सामने रख देना ही मैं इस अवसर पर पर्याप्त समझता हूँ। यदि इसे त्रुटि ही समझा गया, तो इसकी कसर और कभी पूरी करने का यत्न करूँगा।

अंत में मुझे यह सर्वाधिक आवश्यक प्रतीत होता है कि मैं भारतीय चित्रकला के अग्रगण्य आचार्य आदरणीय श्रीनंदलाल वसु तथा अन्य चित्रकार-मित्रों के प्रति अपने हृदय की गंभीर कृतज्ञता प्रकट करूँ। उन्होंने अत्यंत उदारता-पूर्वक, भारत के विभिन्न

प्रांतों से, इस कृति को अपनी यशस्वी तूलिकाओं का प्रेम-प्रसाद प्रदान करके वास्तव में मुझे अपना चिर-ऋणी बना लिया है।

पिछले वर्षों में जिन संपादक-मित्रों ने इनमें से कई कविताओं को प्रेम-पूर्वक समय-समय पर अपने सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करके पाठकों से मेरे संबंध को घनिष्ठ बनाने में सहायता दी, उनका भी मैं कम कृतज्ञ नहीं हूँ।

उन अनेक साहित्य-सेवी मित्रों को भी मैं आदर के साथ स्मरण करता हूँ, जो ममत्वपूर्वक मुझे समय-समय पर इस संग्रह को शीघ्र प्रकाशित कराने की प्रेरणा देते रहे, किन्तु, जिनका आज्ञापालन मैं आज के पहले न कर सका।

भारती-निकेत,
मुरार (ग्वालियर)
माघ १५ सं० १९९६ वि०

प्रिय भाई हरिहर को
सस्नेह भेंट ।

—मिलिंद

कविता-सूची

❀ ❀ ❀

चित्र-सूची

अनुरोध

वेध दुर्ग नीरव जड़ता का
बंधन मुक्त करो ये प्राण;
स्वर के उच्च शिखर से, सुंदरि,
छेड़ो एक बाण-सी तान।
जीवनपथ की अमिट अमावस बने निमिष में स्वर्ण - प्रभात;
बिखरा दो उदार अधरों से प्रथम किरण - सा स्मित अवदात।
एक अनिंद्य रूप की ज्वाला,
देवि, जलादो त्रिभुवन में,
जिसमें 'अशिव', 'असत्य', 'असुंदर',
हो सब भस्म एक क्षण में।
रँग दो मेरे स्वप्न, सजनि, सब, जीवन - मरण अरुण कर दो;
जन्म - जन्म का शून्य पात्र यह आज बूँद - भर में भर दो।

विश्वसुंदरी

खिल उठता है हृदय गगन का,
जल, थल, अनिल, अनल, कण-कण का,
खिलती है जब इन अधरों पर ऊषा-सी मुसकान,
जग के श्रांत पथिक, बन मधुकर,
मधु ले जाते हैं, हक पल-भर,
दशों दिशाएँ शतदल-सी खिल करने लगतीं दान,
खिलती है जब इन अधरों पर ऊषा-सी मुसकान।

सकल कामना लय होती है,
चतुर चेतना भी सोती है,
इन नयनों में भर ढलकाती हो जब मद की धार,
अँगड़ाई लेता है यौवन,
मुँद जाते सुख-दुख के लोचन,
आह, झूम उठता है प्रति-क्षण पागल-सा संसार,
इन नयनों में भर ढलकाती हो जब मद की धार।

सर के लहराते जीवन-सा,
जब, स्वरलहरी के कंपन-सा,

लहराता है मलयानिल में इस अंचल का छोर,
पाते ही असीम आह्वान,
लहरा देता है अनजान
प्राची और प्रतीची के प्राणों में एक हिलोर,
लहराता जब मलयानिल में इस अंचल का छोर।
खग करते कलरव अंबर में,
लहरें उठती हैं सागर में,
भर देती हो अखिल शून्य को जब गाकर तुम गान,
वेदना बनती विकल विहाग,
मौन संध्या का धीमा राग,
जड़ जग के होते हैं चेतन तान-तान पर प्राण,
भर देती हो अखिल शून्य को जब गाकर तुम गान।
पुलकित होता है नंदनवन,
थिरक-थिरक उठते हैं उडुगण,
अपनी तानों की गति पर जब तुम करने लगती हो नर्तन,
सुन कर नूपुर की झंकार
खुलते हैं रवि-शशि के द्वार,
इन चरणों के ताल-ताल पर त्रिभुवन में होता है कंपन,
अपनी ही तानों की गति पर जब तुम करने लगतीं नर्तन।

❀ ❀ ❀

सौंदर्योपासना

है उषा रँगोली, किन्तु, सजनि, उसमें वह स्थिर अनुराग नहीं;
निर्झर में अक्षय स्वर-प्रवाह है, पर, वह विकल विहाग नहीं।
ज्योत्स्ना में उज्ज्वलता है, पर, वह प्राणों की मुसकान नहीं;
फूलों में हैं वे अधर, किन्तु, उनमें वह मादक गान नहीं।
तुम में जग पाया था मैंने, जग में अब तुम्हें न पाता हूँ;
इस असमंजस में मैं वियोग की घड़ियाँ, देवि, बिताता हूँ।
साधक पाते हैं व्रत-साधन में जिसे समझ आराध्य, प्रिये,
जो ज्ञान-ध्यान का गहन तत्त्व, जो विज्ञों का है साध्य, प्रिये,
जो 'सत्य' और 'शिव' ऋषियों का, युग-युग का है अभिमान, प्रिये,
नयनों में, उर में रखा उसे मैंने तो 'सुन्दर' मान, प्रिये।
उस रात, तुम्हारे वंशी-रव ने नभ में जो खींची रेखा,
उसके छवि-अंकन में 'अनन्त' को सर्व-प्रथम मैंने देखा।

लघुता की महिमा

हुआ चाहता एक तान में
शेष, गान जग का मधुमय,
दो अधरों का स्मित बनने को
विश्व-रूप करता अनुनय;

बन लघु जुही एक कोने में
झरा चाहता नन्दनवन,
धरा एक रजकण में अपना
भरा चाहती है यौवन;

'स्वाति-बिन्दु बन बरस पड़ूँ'—है
निश्चय करता सिन्धु गहन,
बनकर लघु तारा प्रभात का
ढला चाहता नील गगन;

लघुता की महिमा पर विस्तृत
विश्व वारता है जीवन;
कवि का हृदय ढलकता है जब
विदा-काल का आँसू बन।

सौंदर्य और प्रेम

प्रेयसि, इन प्यासी पलकों में मन्दाकिनी प्रवाहित कर दो।
इन निःस्वन जीवन - छिद्रों को अपने सुधा-श्वास से भर दो।
मेरी चंचल रूप - तृषा को ढँक लो स्नेहांचल - छाया में;
अमर - लोक की करो प्रतिष्ठा मेरी इस नश्वर काया में।
यह अनिंद्य सौंदर्य ! आह, क्या इस पर मर्त्यों का अधिकार ?
यह चिर - यौवन ! इसे चाहिए अजर प्यार, अमरों का प्यार !

आओ, जग के कुश - काँटों को पारिजात के पुष्प बनावें;
जन्म - मरण की धूप - छाँह में चिरशिशु - से खेलें, सुख पावें।
तुम अन्तर की रूप - सुधा से मधुर करो त्रिभुवन का जीवन;
मैं प्राणों की प्रेम - ज्योति से जगमग कर दूँ जग का आँगन।
'अशिव, असुंदर' की समाधिपर 'चिरसुन्दर, शिव' का उत्थान !
एक साधना मानवता की !—शत - शत स्वर्गों का निर्माण !!

विश्वरूप

❀

मत मर्म - व्यथा छूने, विद्युत् बन, आओ ;
बन निबिड़ - श्याम घन, प्राणों में छा जाओ।
किरणों की उलझन क्षणिक, न बनो सवेरा ;
बन निशा डुबा दो छवि में जीवन मेरा।
अस्थिर जीवन - कण बन न नयन ललचाओ ;
बन शांत मरण - सागर असीम, लहराओ।
जो टूट पड़े क्षण में विनाश - इंगित पर,
वह तारक बन मत ध्यान भंग कर जाओ ;
जिसकी अंचल - छाया में सोवे त्रिभुवन,
वह अन्तहीन आकाश नील बन आओ।
फिर उसी रूप से नयनों को न सुलाओ ;
अभिनव अपूर्व छवि जीवन को दिखलाओ।
दर्शन - सुख की परिभाषा नई बनाओ ;
लघु दृग् - तारों में नहीं, हृदय में आओ।

वह विश्वरूप बन आओ, मेरे सुन्दर,
जो रेखाओं का बन्दी बने न पट पर;
जिसको भर रखने को तप कर जीवन-भर
उर बने एक-दिन अन्तहीन नीलांबर।
अनुभव को नयनों तक सीमित न बनाओ;
छवि से जीवन के अणु-अणु को भर जाओ।
हर झाँकी में विस्तृततर बन कर आओ;
जग के प्राणों की प्रति-क्षण परिधि बढ़ाओ।

● ● ●

निष्ठुर

हाँ, बिंधने दो प्रतिपल अपने
आघातों से यह अन्तर्,
जाने कब, बन जायँ अचानक
इस में सप्त रन्ध्र सुन्दर !

जन्म - जन्म के रुद्ध प्राण ये,
एक प्रेरणा में, अनजान,
मेरी उस नवीन वंशी से
फूट पड़ें बन आकुल तान;

विश्व - सुन्दरी के अंचल का
उस स्वर पर लहरावे छोर,
उठे अनादि भावनाओं के
'रस' - मानस में नई हिलोर;

विचलित मधुप, पँखड़ियाँ कंपित,
पुलकित अरुण 'रूप' - शतदल,
विस्मित हो भारती, स्तब्ध हों
वीणा पर उँगलियाँ चपल।

निवारण

⊕

(१)

सजनि, लौटा लो यह आह्वान !

तुम्हारा लोक,

न तम है जहाँ, न है आलोक ,

न सुख है और न शोक ,

बहुत ऊँचा है, ध्रुव है, देवि ,

न अस्थिर मर्त्य पहुँचता वहाँ ,

झूमती रहती हो तुम जहाँ

अपनी ही मादकता में

अपने ही 'अपनेपन' में ;

बुलाती हो क्यों फिर तुम मुझे
अचानक इंगित कर हर बार,
रवि - शशि - तारक आदि
खोल कर अगणित द्वार ?

भूल जाती हो क्या, यह विश्व
बहुत नीचे है, मैं हूँ दीन ;
दूर हो तुम, मेरी गति क्षीण ?

मलिनता की कंथा कर दूर
यत्न करता हूँ ज्योंही—चलूँ
एक-ही-दो पग मैं उस ओर,

विश्व कहता है—"ठहरो !
चले कहाँ ? दे दूँगा मैं अभिशाप !
चरणरज पर मेरी विश्राम
करो ; बस यही तुम्हारा काम !"

हाय, इस दुबधा में पड़ मुझे
'न मिलती माया और न राम।'

पतन से जब मेरा उत्थान
देखता है होते संसार,
न जाने क्यों, इसमें नादान
समझता है अपना अपमान !

सजनि, लौटा लो यह आह्वान !

(२)

सजनि, मानो ना, करो न प्यार !

मेरे उर की मृदुल कल्पना की

अंगुलि लेकर कर में,

बना लहरों का यान,

अरी छविमान,

जब तुम लाँघ पूर्णता - सागर,

ले चलती हो मुझे भुलाकर,

देवि, उस पार ;

इधर हँसता है सब संसार,

उधर तुम्हारी संमोहन - सी

तानों पर मैं बाल

दे उठता हूँ ज्योंही ताल

साध - साध ये चरण

बिना अभ्यास

चपल, भोले, अनजान ।

न जाने क्यों हँसता संसार !

सजनि, मानो ना, करो न प्यार !

(३)

सजनि, मानो, मत दो वरदान !

जब तुम अपनी हठी उँगलियों से

ये रूखे केश
समुद सँवार,
वन-कुसुमों का मुकुट उदार
मेरे इस अवनत मस्तक पर
रख देती हो खेल-खेल में
चुपके से सुंदर सुकुमार,
कर देती तो स्नेहकणों से
मनमाना अभिषेक,
लुभा लेती हो भोले प्राण,
पुलक—मादक सुख का रोमांच—
लुटा देता है मेरा ज्ञान!
सहज अवलोकित करती चिबुक
उठा जब हो तुम मेरा भाल,
एक चितवन में हृदय निहाल;
उठ जाते हैं नयन तुम्हारे मुख की ओर,
चंद्र में होते लीन चकोर!
तनिक उन्नत होता अज्ञात,
युगों के बाद,
एक बार मेरा भी यह
भोला-भाला-सा भाल
छोड़कर अनायास अवसाद

तृप्ति का गौरव ! आह !
न रहती जग की चाह !
क्योंकि 'ऊँची है इसकी हाट
और फीका पकवान।'

तुम्हारे आराधन में इसे
भूल जाता हूँ मैं अनजान।
न कर पाता वांछित संमान।

रूठकर मुझ पागल से, विश्व
उसी को कह उठता 'अभिमान'।
हाय, क्या वह भी है 'अभिमान' ?
सजनि, मानो, मत दो वरदान !

चित्रकार

करके भी राका का शशिमिलनोन्मुख पारावार,
ार, क्यों व्यक्त न करता उस असीम के भावोद्गार ?
तनी भी क्या तन्मयता, क्या इतना भी बेसुध होना !
ाग - कलरव के विना अवतरित करना ऊषा का सोना !
चतुर चितेरे, चित्रित कर चातक की रट सुकुमार ;
में बाँध व्यथा की वीणा की व्याकुल झंकार ।

आकृति मेरा स्वर, तव स्वर मेरी आकृति पावे ;
न रजनी के सन्धि - समय में, इन में विनिमय हो जावे ।
उठे तूलिका, रंग गा उठें, मूक पट बने मुखर ;
नीरव अंकन में भर दूँ अन्तर् - तर का स्वर ।
गगन में चमके ज्योंही, भाव-तारिका की मुसकान,
जब तक साकार करे, मैं सस्वर कर दूँ उसे अजान ।
की परम परिधि तक पहुँचा कर जगती के प्राण,
नयन, उर के अन्तर की सीमा का कर दें अवसान ।
पेत, शून्य जग में वह निकले, कलाकार, हे करुणाकर,
उर के इन्द्रधनुष से मेरे मानस का निर्झर !

सीमा

क्या असीम होने का सुख था ?
भार मुझे विस्तार हुआ।
घड़ियाँ गिन-गिन कर, एकाकी
जीवन थका, असार हुआ।
समझा नहीं किसी ने 'अपना', सबके लिये 'पराया' था;
मुझ 'महान' को अखिल विश्व की लघुता ने ठुकराया था।

❖ ❖ ❖ ❖

सहज-सजीले इन्द्रधनुष-सी
शून्य असीम गगन में,
सहसा उदित हुई तुम मेरे
इस सूने जीवन में।
मेरी ओर मुड़ीं पल में तब जग की आँखें सारी;
सुन्दरि, सतरंगी सीमा थी कितनी सरस तुम्हारी !
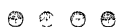
कलाकार का स्वर्ग

ले लो कर्म - क्लांत यह जीवन, ले लो जप, तप, व्रत, साधन ;
बन जाने दो जग की पद - रज मेरा गौरव, मेरा धन ।
खो जाने दो मुझे विश्व के सुख - दुख के कोलाहल में ;
मूक उपेक्षा के आँगन में, विस्मृति के तम - अंचल में ।
सब कुछ ले लो, मुझे बना दो 'रंकों का राजा', स्वामी !
पर, मनुहार माननी होगी इतनी - सी, अन्तर्यामी !
जब भावना - तूलिका मेरी, डूब उषा के सोने में,
अनुभव की तसवीर उतारे अन्तर् - पट के कोने में,
अपनी ही उस सफल सृष्टि पर चढ़ा शेष आँसू दो - चार,
अर्पण - मद में वारे अपना, मुग्ध हृदय, अन्तिम आधार ;
त्याग - तृप्ति का वह असीम सुख अविचल सह लेने देना,
उस सौन्दर्य - स्वर्ग में मुझ को क्षण भर रह लेने देना ।

आत्मदान

सुरभित श्वासों में मर्म - दंश, मृदु चरणों में निष्ठुर प्रयाण ,
अधरों में मदिरा तीव्र और नयनों में ले विप - बुझे बाण ,
ढक कोमल - कर के स्वर्णपात्र में भरे हलाहल पर अंचल ,
सुन्दरते, जग - आँगन में आ, कर दिये मनुज तुमने चंचल ।
अगणित उत्कंठित हृदयों ने विष छीन - छीनकर पान किया ,
कर रिक्त तुम्हारा पात्र, मरण को, हाय, समझ वरदान लिया ।
मर्त्यों को कब सर्वस्वार्पण - मद के रहस्य का पार मिला ?
तुम बढ़ती गईं, विरक्तों की कुटिया का आगे द्वार मिला ।
मदिरा, निष्ठुरता, बाण, दंश, तुमने दे उन्हें समाप्त किये ;
कर प्रायश्चित्त, उन्हें ठुकरा, उन सबने तुमको शाप दिये ।
था शेष तुम्हारे प्राणों में जो छिपा हुआ उपहार एक ,
वह प्रेम - रत्न भी, निर्मोही, ले गये लूट, प्रेमी अनेक ।

* * * *

अब अनाभरण, अकलुष, अशस्त्र थीं तुम, सूनी थी पथ - रेखा ;
कल्याणि, जगाते अलख विजन में तब तुमने कवि को देखा ।
क्या देतीं ? कब चिंता करतीं ? था याचक इधर अधीर, प्रिये ;
बस गईं हृदय में तुम कवि के बन स्वयं अमिट तसवीर, प्रिये !

तीन कलाधर

❀

(१) अंधा गायक

नीरव खँजरी लिये गोद में तुम इस सूने पथ के तीर,
तरु के तले टाट पर बैठे रहते हो, चिंतित, गंभीर।
सहसा, कभी, नाच उठती हैं, आते ही प्रियतम की याद,
खँजरी पर उँगलियाँ, कंठ में तानें, ओंठों पर आह्लाद।
नभ की ओर उठाकर जब ये पलकें पुतली - हीन
आत्मनिवेदन - सा करते हो होकर तुम तल्लीन,
स्वर से उमड़ - उमड़ पड़ता है प्राणों का मद गूढ़;
चित्र लिखे - से रह जाते हैं सुनकर पथिक विमूढ़।
तुम्हीं देख पाते हो उर में उर की आँखों से वह रूप;
स्वर की नभचुंबी डोरों से अंतर् - पुर में उतर अनूप—
कितनी सुरभि, सुधा-मधु कितना, कितनी छवि, कितना संगीत,
कितना सुख, विश्वास, स्नेह, रस, कितना मधुर-प्रकाश पुनीत—

इन छोटे-से प्राणों में 'प्रिय' एक साथ भर जाते हैं !
तरु के तले बटोही केवल एक गान सुन पाते हैं।
त्रिभुवन का आलोक तुम्हारे अंतर् में भर जाता है ;
अतः, बाहरी जग में तुमको तिमिर शेष रह जाता है।

(२) मूक चित्रकार

उषा, तारिका, इंद्रधनुष में, नीरव लहराते जल में,
जो कहता कुछ चंद्रकिरण में, कुछ नभ में, कुछ बादल में,
फूलों के रंगील मौन में मंदस्मित-भाषा बन कर
उर के अनुभव-सा धीरे से खिलता है जो चिर-सुंदर,
उसी भुवननायक की भाषा—मौन—तुम्हारी है भाषा,
तुम रंगीन विश्व के राजा, नीरव जगती की आशा।
त्रिभुवन की भाषा को, अपने नयनों के नंदनवन में
भरमाकर, रख लेते हो तुम मौन बनाकर जीवन में।
जहाँ नहीं झंकार स्वरों की, शब्दों का विस्तार नहीं,
रेखाएँ आकार न रखतीं, रंगों का संसार नहीं,
हो उठता है व्यक्त वहीं—इन नयनों के पट पर—छवि बन,
जन्म-जन्म का मूक हृदय, युग-युग के नीरव प्राण गहन।
पट पर तो कभी-कभी तुम कर पाते हो छवि-अंकन;
छवि ही बन गया तुम्हारा पलकों में सारा जीवन।
'अनुभूति' न तुम खोते हो कहने-सुनने में सारी;
बस हृदय समझ लेता है भाषा रंगीन तुम्हारी।

कब 'अपनी बात' तुम्हारी रख पाता 'मौन' छिपाकर ?
कर देते व्यक्त 'हृदय' तुम 'पुतली' में 'चित्र' बनाकर।

(३) बधिर कवि

भ्रांत बना रहता श्रवणों के कारण यह जग सारा है,
श्रवणशून्यता ही साधक का सब से सरस सहारा है।
श्रवण मूँद, तन्मय हो, विधि ने किया एक 'सौंदर्य' सृजन,
वही विकल वसुधा पर उतरा मधुमय हृदय तुम्हारा बन।
उस तल्लीन साधना का ले जब से विधि से तुमने दान,
इस अनन्त अज्ञात पंथ पर प्रथम चरण रख दिया अजान,
जीवन में सौंदर्य - पिपासा, प्राणों में अक्षय संगीत,
उर में युग - निर्माण - भावना, नयनों में आदर्श पुनीत,
चलते जाते हो, अधरों में मधु ले हर्षोत्फुल्लवदन,
अलख - लोक के वासी प्रिय के पथपर तुम अविरत प्रति-क्षण।
विधि - निषेध के बन्धन, जगके व्यंग्य कहाँ, उपहास कहाँ,
'तानों' की तानें सुनने को समय कहाँ, अवकाश कहाँ;
भय, शंका, संकोच, खेद या पछतावे का यहाँ न नाम,
निंदा - स्तुति का ध्यान नहीं है, यहाँ न श्रांति और विश्राम।
निज पथ पर चलते रहने में मिला तुम्हें गति का 'निर्वाण',
दूर देश के अथक पथिक हे, हे कवि, हे अश्रुत, अनजान!
पदक्षेप में अगणित त्रुटियाँ गिनते रहते हैं रजकण,
पर, तुम चलते ही जाते हो पथ पर पागल - से प्रति - क्षण।

तुम अपने पथ में तन्मय हो, तुम में पथ की ममता है;
वह गति नहीं तुम्हारी, जिसमें कंपन, विरति, विषमता है।
जग के कलुषित कोलाहल में सदा सुरक्षित है 'सुंदर',
श्रवणों पर पट डाल हृदय में छिपा रखा प्रियतम का स्वर,
वही अमर स्वर गूँज रहा है आदिकाल से प्राणों में,
अतः, 'शून्य' अनुभव करते हो मर्त्य जगत् के गानों में।

❀ ❀ ❀

अंतर्-सौंदर्य

कहते हैं, इन अधरों से तुमने लज्जित किये गुलाब, प्रिये ;
अनजान, मोह की, यौवन के प्याले में, भरी शराब, प्रिये !
पर, दो दिन खिलकर इन्हें सदा के लिए म्लान हो जाना है ;
मद के उतार पर रूखेपन की लम्बी अवधि बिताना है।
माना, इन अमल कपोलों ने ज्योत्स्ना को मलिन बनाया है,
सौभाग्य जुही का छीन लिया, मुक्ता का मान घटाया है ;
पर, दो दिन आभा दिखा, इन्हें भी अपनी कांति गँवाना है,
पीले - पत्तों - सा जरा - शिशिर के चरणों में चढ़ जाना है।
संभवतः इन नयनों ने शर - धारा को कुंठित सिद्ध किया,
व्रत - संयम में बाधा डाली, जप - तप के उर को विद्ध किया ;
पर, इनको भी तो काल - चक्र के आगे नत हो जाना है,
खो तेज किसी दिन अन्धकार के अंचल में सो जाना है।

भ्रम है, यदि तुम समझो—मैंने इस नश्वर तन को प्यार किया,
इन लोचन - अधर - कपोलों को चाहा, सुंदर स्वीकार किया;
वह मर्म और है, जिसे हृदय की धड़कन में पहचाना है,
जिसके कारण, प्रेयसि, मैंने तुमको चिर - सुंदर माना है।
पथिकों - से 'युग' जिसके चरणों में कर जाते विश्राम, प्रिये,
श्रद्धा के पुष्प चढ़ा जाते हैं 'जन्म - मरण' निष्काम, प्रिये,
जिसकी मृदुता में 'जरा'—'पतन' के छिपे न तीखे शूल, प्रिये,
वह प्रेम तुम्हारे उर का है इस सुन्दरता का मूल, प्रिये!

● ● ●

ज्योत्स्ना में

०

अर्धचन्द्र के रजत - कटोरे से रजनी का रस कर पान,
झूम उठें निस्सीम गगन में मेरी रूप - तृषा के प्राण।
धीरे - धीरे खोले ज्यों - ज्यों कलिका-सी ज्योत्स्ना लोचन,
मधुमय, मुग्ध, अलस पलकों-सा झुके चेतना का यौवन।

विस्मित जग की भाषा जिनको 'तारक' कह, रह गई अचल,
उन अपूर्व सौंदर्य - सुधा के छींटों से मधुमय, उज्ज्वल।
यह नीलांबर, बने विहग - से मेरे उर का नीड़ उदार,
चपल कल्पना के पंखों का क्षितिज - विचुंबी क्रीड़ागार।

सुंदरता को छोड़, शून्य में है न अन्य अनुभव का नाम;
पायँ उसी के मधुर अंक में मेरे सुख - दुख चिरविश्राम,
जीवन की खोई कविता का जहाँ हृदय को मिले निशान;
जग के ठुकराये भावों को मिले साँस लेने को स्थान।

❖ ❖ ❖ ❖

अन्तर् का आनन्द - सिन्धु हो ऐसी लहरों से भरपूर,
जिनसे टकराकर क्षण में हों चिन्ता की चट्टानें चूर।

रेखाएँ
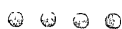
(कुछ बिखरे भाव)

वह 'रूप' बसा पलकों में, जब से बन मेरा 'अपना',
रेखाएँ चाह रही हैं—'साकार बने वह सपना'।

❖ ❖ ❖ ❖

बड़े यत्न से जो 'छवि' किरणें खींच रही थीं कुसुमों पर,
बरसा दी उस पर स्वर - धारा अल्हड़ अलियों ने आकर।

❖ ❖ ❖ ❖

बेहोशी में जिसे देख जग अंकन को हो उठा अधीर;
रेखाएँ चुक गईं, न उतरी अब तक उस छवि की तसवीर।

❖ ❖ ❖ ❖

होती रहती है जीवन - भर एक व्यथा - सी उर में;
सहज नहीं है 'ज़रा झाँकना' तेरे 'अंतर् - पुर' में!

❖ ❖ ❖ ❖

मेरी बिखरी रेखाओं को जोड़-जोड़ कंपित कर से,
'प्रियतम' की छवि कितने प्रेमी खींच ले गये इस घर से!

मेरे मानस के चिंतन की गहन सृष्टि की छवि के मौन !
बिना मोल बिक चुका विश्व, अब तेरा मोल लगावे कौन ?

❖ ❖ ❖ ❖

स्मृति आती है, तुम अतीत के परदे में हो अंतर्धान ;
हे सुख, तभी मधुर लगते हो दूरागत - मृदु - गान - समान ।

❖ ❖ ❖ ❖

जिससे 'रस'- मानस में खिलते अमित 'रूप'-शतदल प्रति-क्षण ,
उस सौंदर्य - किरण से छूकर करो सुनहला यह जीवन ।

❖ ❖ ❖ ❖

छवि का कूल खोजने वाले ! किसकी नाव बना है 'प्यार' ?
पागल ! पार किया है किसने लहरों पर चढ़ पारावार ?

❖ ❖ ❖ ❖

इतना गहरा रंग चढ़ाता तुम पर मेरा पागल प्यार ,
तुम में आकर हो जाता है लीन सकल छविमय संसार ।

❖ ❖ ❖ ❖

चित्रकार की 'पुतली' में यदि बसी किसी की 'छवि' होती ;
रुकतीं अंगुलियाँ, पट रहता शून्य, तूलिका गति खोती !

❖ ❖ ❖ ❖

निर्मल स्नेह प्रभात - सुमन का, सांध्य उषा की करुणा मौन ;
सखि, इन अधरों की लाली में मिला गया चुपके से कौन ?

❖ ❖ ❖ ❖

कवि अनुभूति - प्रदीप जलाकर करता है जिसमें आलोक ,
'विश्वरूप' का लीला - मंदिर है रसिकों का अंतर्लोक ।

दीप वही, जिस पर आत्माहुति देने आयँ पतंग अधीर;
रूप वही, जिसके दर्शन में बन जावे दर्शक तसवीर!

❖ ❖ ❖ ❖

लाखों आँखों का देखा भी अनदेखा, अनजाना है;
"देख लिया"—कहना तेरे जग में ओछा कहलाना है।

❖ ❖ ❖ ❖

इस जीवन के सूनेपन पर खिन्न मुझे जब पाते हो,
मेरे चिंतन के नभ में तुम इंद्रधनुष बन जाते हो!

❖ ❖ ❖ ❖

एक अधूरी झाँकी पाकर तड़प रहा है यह संसार;
हाय, कभी तो खोला होता तुमने उर का पूरा द्वार!

❖ ❖ ❖

प्रेम
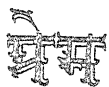
स्नेहमयी

है 'वन'-आवरण पलक में,
पुतली में नील 'गगन' है,
इन आषाढ़ी आँखों में
अंतर् का स्नेह सघन है।

मादकता गहन उदधि की,
निर्झर की मुक्त विमलता,
फूलों की सरल हँसी बन
खिलता तुझ में यौवन है।

हिमगिरि के धवल शिखर-सी
तेरे उर की उज्ज्वलता
अविरल ममता बन-बन कर
पिघला करती प्रति-क्षण है।

हे कण-कण के अंतर्-तर-
के सप्त-स्वरों की रानी!
तेरी ही स्वरलहरी पर
लहराता यह त्रिभुवन है।

इस विश्व-विहग ने तेरे
प्राणों में नीड़ बनाया,
प्रतिदिन थककर संध्या को
करता यह वहीं शयन है।

तू बड़े प्यार से इस पर
निविड़ांचल फैला देती,
फिर पास खींच अकुलाकर
कर लेती आलिंगन है।

● ● ●

राका में

लिखे रजनी ने जो, उर खोल, विविध नव - नव छंदों में गान,
पंक्तियाँ तारों की बन चमक उठे नभ में जगमग द्युतिमान;
शशि - किरणों से धुले जुही की
कलियों के मृदु प्राण,
उमड़ पड़ी कुंजों की कविता
बन बंशी की तान।
छिटक, छन छिद्र - पथों से, रुद्ध कुटीरों के दीपों के प्राण
मुक्त - नभ - छाया - पथ में चले कौमुदी में करने को स्नान।
कण-कण बना उदार, हुआ उर-
उर का हलका भार,
गिरि - से हृदय कठोर बह गये
बन निर्झर सुकुमार।
चतुर्दिक् उत्कंठा उठ पड़ी, प्रेम का उमड़ा पारावार;
खुली नभ के गोपन की गाँठ, चाँदनी में डूबा संसार;
न खोला फिर भी, प्राणाधार,
अभी तक तुमने अपना द्वार!

कुछ का कुछ

⊛

घर - घर गाने चला भक्त जब गिरि की दृढ़ता का गुणगान,
उसी रात, उर चीर, प्रेम की गंगा फूट पड़ी गतिमान;

गुणगायक झुँझलाता है—
हाय, युगों के अचल! द्रवित क्यों
पल - भर में हो जाता है?

लिखा महानद - महासिन्धु के महामिलन का ज्योंही गान,
टेढ़ी - मेढ़ी विकल पंक्तियाँ विरह - गीति बन गईं अजान;

कवि कुंठित हो जाता है—
ऐ आनन्द, वेदना में क्यों
तू सहसा लय पाता है?

अंकित करने चली तूलिका ज्योंही विस्तृत नील गगन,
किसी नयन का लघुतारा खिंच गया चित्रपट पर तत्क्षण;

चित्रकार चकराता है—
हे असीम, क्यों तू सीमा में
बरबस बँधने आता है?

❁ ❁ ❁

उद्‌बोधन

❁

मिले न 'प्रियतम'–ज्योत्स्ना के उस
महामिलन के सुख का छोर;
अंतर् के आनंद - सिंधु में
फिर उठने दे एक हिलोर।

तोड़ एक पल में जड़ता के
शत-शत बंधन, हे स्वच्छंद !
जाग प्रेरणा की राका में
फिर मेरे प्राणों के छंद !

बड़े भाग्य ! पथ भूल आ गया
प्रेम - पर्व भी अब की बार;
उठ. फिर तीर्थ बने त्रिभुवन का
मेरे कवि - जीवन का ज्वार।

उठ, अवरुद्ध श्वास, इन उत्सुक
घड़ियों में किसका सोना;
नीरवता का वंश - खंड जब
चाह उठे वंशी होना !

❁ ❁ ❁

आदर्श प्रेम

❁

कैसे कोमल कुसुम प्रेम का
रहे स्वर्ण की झोली में ?
कैसे सहूँ भार वैभव का
प्रियतम की मृदु बोली में ?

कैसे आज भिखारिन 'राधा'
महलों का देखे सपना
सोते हो सुवर्ण - शय्या पर ;
कैसे तुम्हें कहूँ 'अपना' ?

❁ ❁ ❁ ❁

वेश बना धनहीन कृषक का ,
सरल श्रमिक - से प्रेमी बन ,
महलों का वैभव ठुकराकर
नंगे पाँवों, जीवनधन ,

मेरी जीर्ण कुटी तक आओ
अधरों पर मुरली साधे ;
मैं कह दूँ "मेरे मनमोहन !"
तुम कह दो "मेरी राधे !"

❁ ❁ ❁

भिक्षा

कुमुद - करों को समुद पसार,
एक साथ शत - शत अंजलियाँ
खोल प्रतीक्षक - अंतर् - सी,
विदा - काल में जब रजनी से
माँगा करती है सरसी
सरल स्नेह की स्मृति में, उज्ज्वल
ओस - कणों का मुक्ता - हार,
कुमुद - करों को समुद पसार।

पाने को घन के दर्शन,
रजकण बनकर मरु के उर की
बरसों की गभीरतर प्यास,
नभ की ओर वायु में मिल, है
उठती छोड़ गहन उच्छ्वास
व्याकुल स्नेह - याचना - सी जब
तोड़ वेदना के बंधन,
पाने को घन के दर्शन,

बनकर दीन भिखारी एक,

मंत्र - मुग्ध - सा चारु चंद्रिका-

के चरणों में होकर लीन,

किसी मधुरता की आशा से

नभ की ओर चेतनाहीन

जब असीम सागर लहरों के-

फैलाता है हाथ अनेक,

बनकर दीन भिखारी एक,

क्यों न उठें मेरे भी हाथ?

तेरी ओर, स्नेहघन, खोकर

मिथ्या लज्जा, भय, संकोच

कर विलीन एकांत प्रेम में

उर के दुख - सुख, चिंता, सोच,

इन उत्सुक प्राणों में आकुल-

लहरों के उठने के साथ,

क्यों न उठें मेरे भी हाथ?

● ● ●

पागल

ये मृग जो उच्छृंखल हैं,

बन की मृदुल दूब को छू सुख परम पुलक का पाते हैं,

एक बार लेटे, सो मानो, लेटे ही रह जाते हैं;

ये भी तो, सखि, पागल हैं।

ये मधुकर जो चञ्चल हैं,

"हिल न जायँ पँखड़ियाँ कहीं"—इस भय से जबतक हो न प्रभात,

निश्चल बन, काटा करते हैं कुसुमों की कारा की रात;

ये भी तो, सखि, पागल हैं।

अस्थिर जो पल्लव-दल हैं,

सरिता का संगीत सवेरे ज्योंही ये सुन पाते हैं,

श्वास रोक, सुध-बुध खोकर स्वर में विलीन हो जाते हैं;

ये भी तो, सखि, पागल हैं।

ये तारे जो झलमल हैं,

रात-रात भर निर्जन नभ में, भूल हृदय का सुख-संताप,

शशि की रूप-सुधा पीते हैं अपलक नयनों से चुपचाप;

ये भी तो, सखि, पागल हैं।

तू और मैं

मेरी वीणा है सुकुमार,
कोमल स्वर हैं, चंचल तार।
सखि, तेरे गंभीर गान में
भरा हुआ वैभव का भार,
सजे हुए उर के उद्‌गार;
कैसे हम - तुम एक - साथ मिल
विश्व - विपिन में करें विहार,
मिला स्वरों को एकाकार?
मेरी वीणा है सुकुमार।

ऊँचा है तेरा संसार,
तरु के नीचे, इस कुटिया में
सीमित है मेरा मृदु प्यार;
ऊषा से अनुराग, ओस के
रजतकणों से रस अविकार,
निर्झरिणी से स्वर सुकुमार,
फूलों से ले सुरभि उधार,

सरल प्रकृति का लघु नन्दनवन
बना हृदय मेरा साकार।

छोटा-सा सुख, नत मस्तक पर
अपना अंचल सदय पसार,
छू-छूकर वेदना-विपंची-
के छोटे-छोटे मृदु तार,
तन्मयता की चरणरेणु पर
बिछा रहा है बारम्बार
मेरे मानस की झंकार!
ऊँचा है तेरा संसार,
तरु के नीचे इस कुटिया में
सीमित है मेरा मृदु प्यार!

❀ ❀ ❀

प्रथम परिचय

युग - युग की साधना हृदय की
जन्म - जन्म का जोड़ा धन
एक पुलक में उमड़ पड़ा इन
नयनों में दो बूँदें बन।

धीरे से ढलका, चरणों में
उनके पल - भर लीन हुआ;
फिर मेरा सर्वस्व धूल में
मिलकर परिचयहीन हुआ।

तन की पुलक, हृदय की धड़कन,
मुख का मौन, पलक का भार,
छोटे - छोटे क्षण, भावों का
सतरंगा सुन्दर विस्तार!

मुझे ज़रा - सी लज्जा - सी थी,
उन्हें ज़रा संशय था।

❖ ❖ ❖

स्मृति पर है लिखा — हमारा
वही प्रथम परिचय था!

मेरा दीपक

छिपे निराशा - तम - अंचल में आशा - तारक थक कर,
भाग्य - चन्द्र था श्रांत - पथिक - सा सुप्त कहीं मुँह ढककर;
जब विपत्ति - वनचर कोलाहल करते, रह - रह, बाहर,
भूले - भटके टिके, पथिक, तुम इस कुटिया में आकर।

इस दुखिया के हृदय - दीप ने दुख - सुख भूल, तुम्हें पाकर,
चिर - परिचित की भाँति, रात भर, फूल चढ़ाये पदरज पर।

विभव - उषा स्वागत करती है, अब तो हुआ सवेरा!
जाओगे? क्या कहा? "अभी है आगे पथ बहुतेरा"?
अच्छा! अब मनुहार मान कर तुम्हें भला क्या पाना है!
सारी रात जला कर इसको अब कहते हो "जाना है"!

सुनो बटोही, जाते - जाते, इसे बुझाते जाना;
यही बहुत है, जल कर इसने सीखा स्नेह निभाना?

निष्ठुरता

एक अनंत व्यथा जीवन में,
एक अभाव हृदय में,
सब खो, पाया मैंने यह वर
तेरे चरम प्रणय में।
ओ निष्ठुरते, दूर लक्ष्य की-
दुर्लभते, तू मेरी!
संकट - स्नेही असफल उर को
प्रिय केवल छवि तेरी!
ज्ञानी हँसें, निराशा ही पागल प्राणों की आशा है,
सर्वनाश - ज्वाला में जब आत्मार्पण की अभिलाषा है!

दीपावली

झिलमिल तारक - दीपों में मैं
लोचन - ज्योति मिलाऊँगी,
इस प्यासे प्रकाश को उर का
संचित स्नेह पिलाऊँगी।
वन-कुसुमों से चुन-चुन कर मैं
तेरी कुटी सजाऊँगी,
आज विजन वन में जीवन की
दीपावली मनाऊँगी।

अभिलाषा है, तेरा स्वर हो
मेरी वीणा की झंकार;
मेरे प्रेम - लोक की प्रभुता
तेरे वैभव का हो सार।
हृदयहीन जगमग जग से, प्रिय,
अलग सजे अपना संसार;
ढलकें पदरज पर दो मोती—
प्राणों के उज्ज्वल उपहार!

सर्वस्वहीनों का स्नेह

मधुमास, निराशा - मरु ही में, खोकर आशा का नीड़, बने !
दृग् - जल से धुले कपालों से यह निर्धनता उल्लास बने !

भावी की क्षीण स्वर्ण रेखा, गत वैभव का सुन्दर सपना—
केवल भ्रम, केवल व्यंग्य, प्रिये, बस वर्तमान ही है अपना ।

दुख से भय, संकट से कंपन, कष्टों से विचलित होना क्या !
जो व्यथा नियत है, ध्रुव है, सखि, उसको कहने में रोना क्या !

जो कुछ होना हो, वह होले, दुर्भाग्य - कोष होले खाली,
कण - कण क्यों ? विपद् - सिन्धु उमड़े, छलका दे जीवनकी प्याली ।

चिंता ? चिंता की चिता - भस्म पर छिड़े प्रेम का गान, प्रिये !
बिखरे विनाश के इस पथ पर अधरों की मृदु मुसकान, प्रिये !

हम, सब कुछ खोकर, चलो सीख लें एक दूसरे को पाना ;
निष्ठुर अभाव के निर्जन में निर्भय एकाकी रह जाना ।

जीवन के अन्तिम संबल की भी गाँठ खुल पड़े आज प्रिये !
मिल जाय हृदय से हृदय, छोड़ जग का भय, झूठी लाज, प्रिये !

जिन सुख-दुख, विभव-अभाव, दिवसरजनी में सीमित जग सारा,
तन्मय, अनन्य यह प्रीति-पंथ, प्रेयसि, है उन सब से न्यारा !

जग पागल कहता रहे हमें, युग-युग तक अपना 'दौर' चले ;
प्राणों के प्यालों में निर्मल प्राणों का अक्षय स्नेह ढले !

● ● ●

उदार प्रेमी

जर्जर अंतर्-पात्र रिक्त कर, प्रेमी, बहुत हुआ संताप !
भर दे विकल वेदना अपनी चुन-चुन फूलों में चुपचाप।
बुझती संध्या के अंचल में कर अतृप्ति का अब अवसान ;
अपने अक्षय उज्ज्वल आँसू ओसकणों को कर दे दान।
श्रांत वायु के उच्छ्वासों में भर दे अपने उर की आह ;
सैनिक के जलते जीवन को दे दे, दाता, दारुण दाह।
दे दे विश्व-व्यथा से भर कर निर्झर को अपने उद्‌गार ;
दे दे किसी मूक भावुक को अपनी वीणा की झंकार।
भाव-भरी जीवन-झोली से लेकर एक-एक उपहार,
दे दे जग के कण-कण को कर ले हँसते-हँसते उपकार।
सूना बनकर मुझको दे दे अपना सूनापन उपहार ;
भिक्षुक की सूनी झोली का सूनेपन पर ही अधिकार।

अंतिम अनुभव

प्राणों की यह अमर प्यास ही जब प्रेमामृत - क

नयनों की अनिमेष प्रतीक्षा ही तेरा दर्शन

श्रवणों की आकुलता ही तव पद-ध्वनि, जीव

मेरा उत्सुक बाहुपाश ही तेरा आलिंग

तेरा निविड़ मिलन बन जावे यह सूनापन

विरह-वेदना ही जब, प्रियतम, अनुभव चरम

उन तन्मय घड़ियों में तेरा आना और न

अपने में तुझको पाकर फिर तुझ में तुझको

जीवन - संगीत

चित्रकार—श्री सोमालाल शाह (गुजरात)
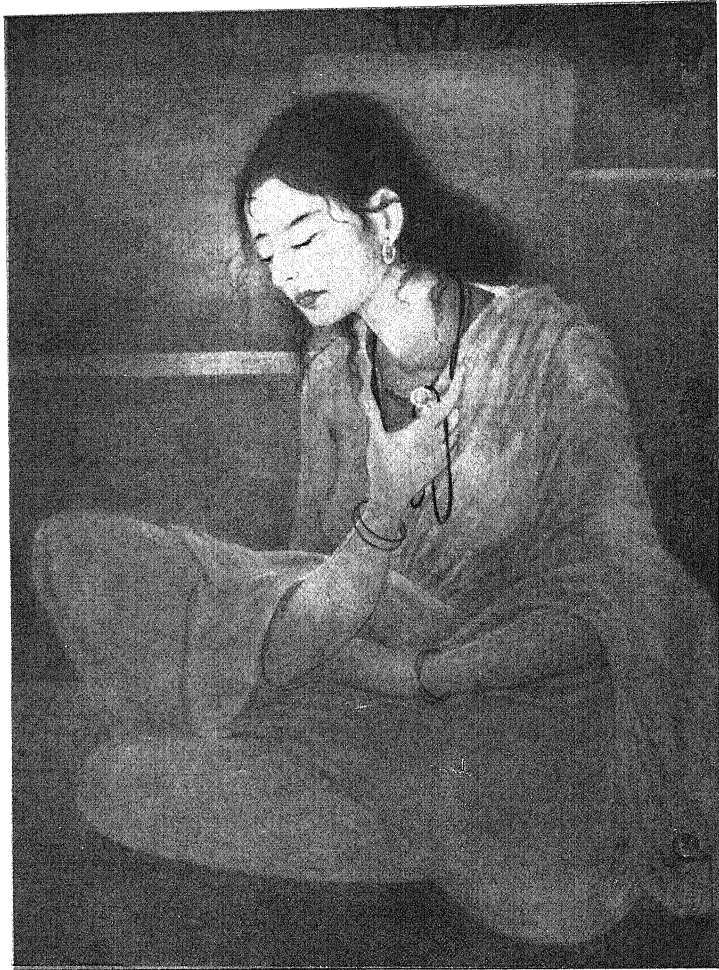
प्रतीक्षा

उर के करुणासागर से चुन तरल - सरल मोती सुकुमार,
मेरे पथ पर नयनांजलियाँ भर-भर बिखराता हो प्यार;
लौट-लौट जाते हों चाहे निखिल विश्व के नयन निराश,
अपलक अथक अचल आँखों से देख रहा हो पथ विश्वास;
शत-शत अरमानों की धड़कन, आशा के अगणित तूफ़ान,
अठखेलियाँ कल्पनाओं की विकल बना देती हों प्राण;
प्रेमसूत्र में गूँथ हठीले हिय की मनुहारों का हार,
तत्पर हों बंदी करने को यह पागल उर प्राणाधार;
जहाँ एक पल का विलंब हो खलता निरवधि कल्प समान,
पथ पर नयन, श्रवण आहट पर, आशा पर अटके हों प्राण;
सौरभ, मेघ, विहंग, पवन या कुछ भी बनें, बनें गतिमान,
एक बार उस प्रेमराज्य की रज तक पहुँचें मेरे प्राण!

रेणुकाएँ

१

(कुछ बिखरे भाव)

रजनी के तम में लगते हैं उज्ज्वल नभ के तारे;
मेरे अंतर्-तम के तम में चमक उठे तुम प्यारे!

❖ ❖ ❖ ❖

जिस 'रहस्य' को हृदय छिपाता है शत-शत आवरणों में,
ढलका देता है क्यों पल में उसे अपरिचित चरणों में?

❖ ❖ ❖ ❖

ऋषि, इस मोक्षसाधना का फल कहीं प्रेम का पाश न हो;
छिपा उस इस मलयाचल पर देखो कहीं सुवास न हो!

❖ ❖ ❖ ❖

घन में प्रथम सरसता-से तुम, प्रथम ज्योति-से नयनों में,
इस उर में आ बसे अचानक प्रथम हास-से सुमनों में।

❖ ❖ ❖ ❖

जिसकी छवि में अखिल विश्व का अनुभव मिलन कराता है,
अखिल विश्व में विरह उसी की क्षण-क्षण छवि दिखलाता है।

❖ ❖ ❖ ❖

क्यों पल में पागल पलकों ने पुलकित पूँजी ढलकाई;
कूक उठी प्राणों की कोयल, किस माधव की सुध आई?

❖ ❖ ❖ ❖

तेरे जिस 'तप' का प्रसाद है प्यासे नयनों का बहना,
कितना हृदयहीन है उसको तेरी 'निष्ठुरता' कहना!

❖ ❖ ❖ ❖

कर विलीन अपना 'अपनापन' तुझ में मैंने, जीवनधन,
एक अमर धन पाया है, जो कहलाता है 'पागलपन'।

❖ ❖ ❖ ❖

तुम वंशी बन, सूने में, श्वासों के पथ पर आये;
क्षण में, ये अधर अनाड़ी, त्रैलोक्य जगा, शरमाये।

❖ ❖ ❖ ❖

रूखी हँसी हँसी थी जगने जिसे 'क्षणिक' बतलाकर,
वही 'अमर' बन गया हृदय में मेरे आज समाकर।

❖ ❖ ❖ ❖

तुम तम ही बन इस उर में यदि बसना चाहो प्यारे;
परवाह नहीं, जीवन के बुझ जावें रवि-शशि-तारे!

❖ ❖ ❖ ❖

छा जाता जो शून्य हृदय के भीतर, बाहर, चारों ओर,
उस उदार प्रियतम को कहता क्यों कृतघ्न प्रेमी 'चितचोर'?

❖ ❖ ❖ ❖

वह 'उमड़न', वह प्रथम स्नेह, वह 'सकुचाहट'—पलकों की आड़,
एक बार, सखि, इन नयनों का भादों पुनः बने आषाढ़!

❖ ❖ ❖ ❖

मानवता के अमृत—स्नेह—से जिसका अंतर् है भरपूर,
पथिक, न उस प्रेमी से पूछो—अमरों का पुर कितनी दूर!

❖ ❖ ❖ ❖

अनायास अनजान अपरिचित निर्जन में खिल जाता है;
वन्य - कुसुम है प्रेम, विश्व के आँगन में कुम्हलाता है।

❖ ❖ ❖ ❖

कब खोकर हृदय सदा को मैंने कर दिया पराया?
नयनों की राह लुटाकर, पीड़ा के पथ से पाया!

❖ ❖ ❖ ❖

ऋषि का 'सत्य', दार्शनिक का 'शिव', चित्रकार का 'सुंदरतम',
कवि का 'सरस', 'मधुर' गायक का, वही 'अमर' मेरा 'प्रियतम'।

❖ ❖ ❖

जीवन

जीवन-पथ पर

ॐ

रे अंचल की छाया में कैसे सुख से बीती रात !
ला अमृत, मुँह धुला, विदा कर, उगा अरुण, अब हुआ प्रभात ।
ख की गोद, प्रेम की थपकी, ममता का मादक चुंबन,
धुर नींद, स्वप्नों की दुनिया, वे दुलार के दुर्लभ क्षण—
ारे थे, पर, अब तो नभ में रहे न जगमग तारे हैं;
ग बदला, गा उठे विहग, खिल पड़े कुसुम भी सारे हैं।
ाप्रति के कोलाहल से, माँ, अब तो गूँज रहा त्रिभुवन;
उठो, चलो, आओ !" कह-कह कर आकर्षित करता कण-कण ।
गी - साथी किलक रहे हैं, छोड़, खेलने जाने दे;
ाड़ नहीं, अब दौड़-धूप में मुझे ठोकरें खाने दे।

ॐ ॐ ॐ

उगता राष्ट्र

मेरे किशोर, मेरे कुमार !

अग्निस्फुलिंग, विद्युत् के कण, तुम तेज पुंज, तुम निर्विषाद,
तुम ज्वालागिरि के प्रखर स्रोत, तुम चकाचौंध, तुम वज्रनाद;
तुम मदन-दहन दुर्द्धर्ष रुद्र के वह्निमान दृग् के प्रसाद,
तुम तप-त्रिशूल की तीक्ष्णधार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

तुम नवजाग्रत उत्साह, तीव्र उत्कंठा, उत्सुक अथक प्राण,
तुम जिज्ञासा उद्दाम, विश्वव्यापक बनने के अनुष्ठान;
उच्छृंखल कौतूहल, जीवन के स्फुरण, शक्ति के नव-निधान,
तुम चिर-अतृप्ति अविरत सुधार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

अक्षय संजीवन-प्रद मद से कर अन्तर्‌तर भरपूर, शूर,
तुम एक चरण में भय, चिन्ता, सन्देह, शोक कर चूर-चूर;
प्राणों की विप्लव-लहर विश्व में पहुँचा देते दूर-दूर!
तुम नवयुग के ऋषि, सूत्रधार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

न्मत्त प्रलय की तन्मयता तुम, तांडव के उल्लास - हास ,
ग - परिवर्त्तन की आकांक्षा, उच्छृंखल सुख की तीव्र प्यास ;
म वन्य-कुसुम, तुम नग्न - प्रकृति की पावनता की मुग्ध - वास ,
तुम आडंबर पर पद - प्रहार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

म यौवन - फल के पुष्प और शैशव - कलिका के हो विकास ,
म दो विश्वों के संधिस्थल पर आशा के उज्ज्वल प्रकाश ;
म जीर्ण जगत् के नवचेतन, वसुधा के उर के अमर श्वास ,
तुम उजड़े उपवन की बहार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

म वह प्राणद संदेश, बिखर जाते जिससे दुख, दैन्य, क्लेश ,
ह मस्ती, जिस पर असुर सुरा, सुर सुधा, गरल वारें महेश ;
म रवि की प्रखर किरण के निशि के उर में वह निर्भय प्रवेश ,
जिससे कँप जाता अन्धकार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

ो वन - पर्वत को चीर चले, तुम उस निर्झर के खर प्रवाह ,
ो कुश - कंटक को प्यार करे, उस राही की 'अटपटी' राह ;
ो तड़पे भोग - विलासों में, उस त्यागी उर की उष्ण आह ,
तुम संकट - साहस पर निसार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

तुम एक - एक वे जलकण जो मिलकर बनते अगणित सागर,
वे एक - एक तारक जिनसे 'जगमग' करता विस्तृत अंबर;
तुम वे छोटे - छोटे रजकण जिनपर असीम वसुधा निर्भर,
तुम लघुता की महिमा अपार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

जीवन के दिन गिननेवाले कायर - कृपणों को दहला कर,
पाखंड, मोह, छल, आडंबर के मलिन विश्व से उठ ऊपर;
जो हँसते - हँसते टूट पड़े तारक - सा 'धक - धक' जल क्षण - भर,
तुम वह तेजस्वी, वह उदार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

जो तट से कोसों दूर पहुँच हलका चिन्ता का भार करे,
मझधार अतल में अभय विमल दृग् से जिसके अनुराग झरे,
जो जीवन नौका फँसा भँवर में लहरों से खिलवाड़ करे,
तुम वह तूफ़ानी कर्णधार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

तुम नूतन की जय, जिसको सुन कँप उठता जीर्ण जगत् 'थर - थर',
वह वायुवेग, द्रुत होती गति जिससे मानवता को मंथर;
वह जाग्रति - किरण, अलस पलकों पर तप्त शलाका - सी लगकर।
जो खुलवाती कर्तव्य - द्वार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

ाँ के अंचल की ममता या यौवन के सुख का लोभ नहीं,
जर्रित जरा का पछतावा, बीते जीवन का क्षोभ नहीं;
म वर्तमान के कठिन कर्म, छू सकता तुमको मोह कहीं?
कर सकता बन्दी तुम्हें प्यार?
मेरे किशोर, मेरे कुमार!

म नहीं डराये जा सकते शस्त्रों से, अत्याचारों से,
म नहीं भुलाये जा सकते वीणा की मृदु झंकारों से;
म नहीं सुलाये जा सकते थपकी से, प्यार-दुलारों से,
तुम सुनते पीड़ित की पुकार!
मेरे किशोर, मेरे कुमार!

ल रहे, सींच आशा शोणित से, चरम लक्ष्य अपना पाने,
ितने दुर्गम पथ पार किये, कितने वन-पर्वत हैं छाने!
म हठी भगीरथ, नवयुग की गंगा के पीछे दीवाने!
इस तप पर जीवन रहे वार!
मेरे किशोर, मेरे कुमार!

रे 'प्रह्लाद'! दमन-ज्वाला में मंदस्मित बिखराते हो!
रे 'ध्रुव'! बाधा चीर इष्ट पथ पर बढ़ते ही जाते हो!
रे 'शुक'! प्रबल प्रलोभन में तुम अविचल धैर्य दिखाते हो!
तुम तप्त स्वर्ण, तुम निर्विकार!
मेरे किशोर, मेरे कुमार!

जिसके संमुख आ छिन्न - भिन्न हों क्षण में युग - युग के बंधन ;
बह जायँ असित साम्राज्य प्रबल, ढह जायँ समुन्नत स्वर्ण भवन ;
गौरव - सिंहासन, गर्व - मुकुट भू-लुंठित हों बनकर रजकण ,
वह संघ-शक्ति तुम दुर्निवार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

उत्थान - पतन से पूर्ण बने, हो सुखकर अपनी राह तुम्हें ,
तुम सैनिक, हो न श्रांत कुटिया में टिक रहने की चाह तुम्हें !
हर असफलता से मिले नई प्रेरणा, नया उत्साह तुम्हें ,
तुम रण - सज्जित हो बार-बार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

क्या चिंता ? दृष्टि उपेक्षा की डालें तुम पर ज्ञानी - ध्यानी !
केवल रणभेरी याद रखे, भूले न समर का सेनानी !
सौतेली माँ हो शांति भले ही, सुख मृगतृष्णा का पानी !
दें संधि-पत्र तुमको बिसार !
मेरे किशोर, मेरे कुमार !

● ● ●

आश्वासन

ये त्रिभुवन के त्रास ! विश्व - उर के ये भाव उदास !
अधूरे ये मेरे उच्छ्वास !

विश्व - व्यथा अव्यक्त ! व्यक्त ये ! हैं असार उद्गार !
हाय कवि का अतृप्त संसार !

किन - किन विकल वेदनाओं का करे हृदय व्यापार ?
तरसना ही जीवन का सार !

कहता है संसार, अरे कवि, कहता है संसार—
निर्झर हैं उद्गार, छिपे हैं—इन में सिन्धु अपार !
बहाये जा जीवन की धार !

कभी विसर्जन के बदले यह पायेगा उपहार—
बहते होंगे अखिल प्रवाहों में तेरे उद्गार,
स्वरों में तेरी ही झंकार !

प्यालेवाली

किसी दाह से भस्म हो गया इसका लहराता जीवन ;
ख़ाली प्याला लिये खड़ी है, थके प्रतीक्षा में लोचन।
है प्रेमी आदर्श प्रेम का कोई ऐसा मतवाला,
जो अपने जीवन से भर दे इसके जीवन का प्याला।
सुनो प्रेमियो, करती है तुमको ही दग्ध - हृदय आह्वान ;
चाह रही है त्याग—तुम्हारे जीवन का उज्ज्वल बलिदान।

चलो, हृदय को चीर - चीर कर, इसके आगे आओ ;
अपना - अपना संचित जीवन प्याले में भर जाओ।
अंतिम बूँद बनेगा जीवन किसी भाग्यशाली का,
जो भर देगा पूरा प्याला इस प्यालेवाली का।
भरते ही यह ख़ाली प्याला बन जायेगा संजीवन ;
जीवन लेकर दे जायेगा तुम को मृत्युहीन जीवन।

अमौलिक कवि

चुराकर कुसुमों की मुसकान
छिपा लेता उर में अनजान,
देख जग के अधरों को म्लान
उसी क्षण कर देता हूँ दान;
अमौलिक है मेरी मुसकान।

ाँदनी में फैला अंचल
ाँग लाता निधियाँ निर्मल
गाता पथ-पथ में फेरी,
टाता घर-घर में ढेरी;
अमौलिक हैं निधियाँ मेरी।

मधुर, मादक, मोहक सुकुमार
विहग से लेकर स्वर-उपहार,
विश्व-वीणा के निस्स्वन तार
गुँजाया करता कितनी बार;
अमौलिक मेरी स्वर-झंकार।

निर्झरों से ले मृदु नर्तन,
बुद्बुदों से उत्थान - पतन,
विश्व - पलकों पर पागल बन,
थिरकता मेरा हृत्कंपन।
अमौलिक है मेरा नर्तन।

व्यथित विश्व के कण-कण से ले
मृदु करुणा की धार,
सागर की लहरों से लेता-
हूँ उन्माद अपार;

आत्मोत्सर्ग ओस से, ऊषा-
से सुवर्ण-उपहार,
प्यार पतंगों से, रजनी से
नीरव हाहाकार।

अमौलिक है मेरा जीवन,
अमौलिक है संगीत - सृजन;
अमौलिक कवि हूँ मैं नूतन।

फूल की लालसा

⊛

विजय - वैजयंती माला के
बिखर चुके हों टूटे तार,
सूना गला देखकर पल - पल
तुझे चिढ़ाता हो संसार;
माँ, जिस दिन तू बिलख रही हो
खोकर अपना शुभ शृंगार,
लीन हो चुकी हो पीड़ा में
तेरी वीणा की झंकार;

उस दिन अकुलाकर, ठुकराकर
जीवन का सुख, हास-विलास,
ले बलिदान - धर्म की दीक्षा,
'मर मिटने' का ले संन्यास;
जो अपनी छाती छिदवालें
बनने को तव उर का हार,
उन फूलों का साथी बनकर
मैं भी निज जीवन दूँ वार!

⊛ ⊛ ⊛

महामृत्यु

निशि - सुंदरी करेगी नभ में
मंद - मंद जब मादक नर्तन ,
सत्वर मंथर चरण - ताल पर
टूट पड़ूँगा मैं तारा बन ।

किरणों के चुंबन को बढ़ते-
बढ़ते राका - शशि की ओर ,
महासिंधु में सो जाऊँगा
बनकर आकुल एक हिलोर ।

जब जीवन के महागान की
मधुर तान टूटेगी क्षण - भर ,
शून्य गगन में मिल जाऊँगा
शीघ्र प्रलय की 'लय' में मिलकर ।

हाथ उठा सर की लहरों से
मृत्यु करेगी जब आह्वान ,
लघु जलकण बन शतदल-जग से
ढलक पड़ूँगा मैं अनजान ।

लुटी निधियाँ

⊙

(१)

दे दो, दे दो, मेरा गान !
अयि निर्झरी, प्रेम की मदिरा
पी जब मूक अजान
छके पड़े थे निभृत निलय में
ये मद - अलसित प्राण,

सोती - सी स्वरलहरी अन्तर्-
के अंचल से खोल
चुरा ले गईं थीं चुप के से
तुम वीणा के बोल।
मुझे लौटा दो वह अनमोल
मूक प्राणों की बिछुड़ी तान !
दे दो, दे दो, मेरा गान !

(२)

न दोगे क्या मेरा यौवन ?

अयि वसंत, जग के जीवन के

पतझड़ पर दो बूँद

ढलकाने बैठा था जब मैं

गीली आँखें मूँद,

धीरे से आ, हाय, हृदय की-

झोली में कर डाल,

किधर ले गये भावों का धन

यौवन - सुमन निकाल ?

न दोगे क्या, मधु के महिपाल,

मुझे वह मेरा मधु - मोहन ?

न दोगे क्या मेरा यौवन ?

(३)

कहाँ रख आये मेरा हास ?

अयि सुवासमय सुमन, वेदना—

के वे विस्मृत मास !

लम्बी विफल प्रतीक्षा का वह

हृदयहीन उपहास !

जब, अचेतना में, अधरों का
लूट ले गये हास !
पर, यह क्या ? तुम भी न उसे रख-
पाये अपने पास !
अरे, इस संध्या में फिर मुझे
कहीं से ला दो वह उल्लास !
कहाँ रख आये मेरा हास ?

(४)

लुटा दोगे क्या सभी प्रकाश ?
चंद्र, चुरा इस दीन हृदय के
स्नेहालय का दीप,
पहुँचे थे नभ की सीमा के
जब तुम सहज समीप,
निविड़ चिंतना की वह कैसी
नीरव निशि थी, आह !
सूनी, खुली पड़ी थी, प्राणों-
के मंदिर की राह।
मुझे दे दो वह मेरी ज्योति,
न दो तो रख लो अपने पास !
लुटा दोगे क्या सभी प्रकाश ?

(५)

न देंगे कब तक तेरा धन ?
अभागिनि जीवन-झोली ! देख
लुटी निधियों की तब तक बाट,
निर्झरी, चंद्र, प्रसून, बसंत
न कर लें जब तक बंद कपाट ;
न मानें, फिर - फिर कर मनुहार ,
न दें, रहने दे उनके पास ,
समझ तेरा ही है यह गान
ज्योति यह, यौवन यह, यह हास !
खिलें, फूलें, चमकें या गायें ,
तुझी से पाया है जीवन ।
न देंगे कब तक तेरा धन ?

● ● ●

गुरुता से लघुता की ओर

⊕

(१)

घन के प्रथम स्नेहकण से जो पाता है अभिनव अभिषेक,
पर, जीवन से जिसे पृथक् कर देता वैभव का अविवेक,
जिसे अरुण की प्रथम किरण से मिलता है पहला आलोक,
पर, जग का सुख-दुख अनुभव कर जिसे न होता हर्ष, न शोक,
हम न बनें वह गर्वोन्नत गिरि,
हम न विजन में बनें महान;
संध्या को गृहिणी की आशा जिस पर पलक बिछाती है,
प्रातःकाल सरल श्रमिकों की टोली गाती जाती है,
हास-अश्रु पथिकों के जिसको अस्थिर रखते हैं दिन-रात,
उस पथ में घुल-मिल जो जीवन काट दिया करता अज्ञात,
चलो, बनें हम वह लघु रजकण,
सुख-दुख से कर लें पहचान।

(२)

चपल तरंगों का कोलाहल जिसकी महिमा गाता है,
पर, न मधुर जल का कण जिससे कभी तृषित जग पाता है,
चंद्रकिरण - चुंबन पर मिलता नहीं हर्ष का जिसके छोर,
पर, जग के सुख-दुख पर जिसके उर में उठती नहीं हिलोर,

हम न बनें 'अपने ही में रत',

मुखरित, वह विस्तृत सागर ;

चिंतित कृषक, तृषित चातक, जव, वंचित मीन, भग्न-उर मोर,
जग के अगणित नयन ताकते अपलक सूने नभ की ओर,
अंबर से, हो द्रवित, उमड़ता सदय सजल जो श्यामल धन,
उसको जो चुपचाप सौंपता अपना नन्हा - सा जीवन,

वह नीरव लघु बिंदु बनें हम,

हों जग - हित पर न्योछावर।

(३)

घनगर्जन जिसकी जय-ध्वनि है, है साम्राज्य अखिल अंबर,
भय, आतंक और विस्मय से स्वागत होता है घर - घर,
छिप जाती आकर्षित जग का पल भर जो करके उपहास,
जिसे न जग अनुभव कर पाता 'अपनी' कह कर अपने पास,
हम न बनें वह अस्थिर विद्युत्,
हृदय हीन सुख की मुसकान;
पल-पल तिल-तिल जल-जल भरता कुटिया में जो मधुर प्रकाश,
जलन छिपी जिसके अंतर में, अधरों पर अक्षय मृदु हास,
जिसे देख भूले - भटके को मिल जाता पथ का संधान,
बलिदानों का ध्यान न जिसको, मूक त्याग का जिसे न भान,
चलो बनें हम वह लघु दीपक,
'कुटिया में सीमित' अनजान।

❀ ❀ ❀

एकाकी

⊛

साथ-साथ चलने को नभ में जो बूँदें हैं आकुल होतीं,
अलग-अलग सीपों में पलकर अलग-अलग बनती हैं मोती।
एकाकी नद मद-विह्वल हो जब अपनी सुध-बुध खोता है,
कब, लय होते समय सिंधु में, सरिता से संगम होता है?
हो जाती है अलग मयूरी जब मयूर से मद झरता है,
खोल पंख चंचल चरणों पर एकाकी नर्तन करता है।
एकाकी वन-कुसुम विजन में अपने में तन्मय रहता है,
एकाकी नर्तन का निर्झर नीरव निर्जन में बहता है।
हिमगिरि के सर्वोच्च शिखर से कौन सुहृद् मिलने जाता है;
विद्युत् की चंचल धारा का कब घन आलिंगन पाता है?
हृदय न चिंतित हो, एकाकी-जीवन ही अमरों का धन है;
पथ अनंत, दो दिन के सहचर!—यह भी क्या कोई जीवन है?

❖ ❖ ❖ ❖

दूर-दूर रह मिलने वाले क्या वह सुख दे जाते हैं,
जो, विलीन होकर अपने ही में, एकाकी पाते हैं?
चारों ओर रात-भर भरता नक्षत्रों का मेला है,
अंतहीन नीले अंबर में फिर भी चंद्र अकेला है!

⊛ ⊛ ⊛

निराले फूल

आठों पहर सँभाला तूने
सालों देखा - भाला है,
माना, इनको हृदय - रक्त से
सींच - सींच कर पाला है;
बड़ी उमंगें ले, झोली से
तूने इन्हें निकाला है,
किन्तु, किसी के लिए न अबतक
गूँथी इनकी माला है;
इन फूलों का रूप, रंग, रस-
भी तो ज़रा निराला है,
कैसे कोई अपना ले, ऐ-
माली, तू मतवाला है।
ऐ पागल, न मचल, रहने दे
इनको अभी अमोल;
कभी समझ ही लेगा कोई
सहृदय इनका मोल।

शहीद की चिता पर

❀

जागो, जग के तारुण्य ! आज बलि - पथ की प्रेरक वेला है ;
उस मृत्युंजय की चिता - भस्म पर दीवानों का मेला है ।
यह चिता ! आह, इसको समझो मत भस्मराशि शीतल कोई ;
हैं ज्वालागिरि - से विद्रोही उर की इसमें आहें सोई ।

इस रजमें हिमगिरि - से उन्नत उस मस्तक का अभिमान छिपा ;
आघात - प्रलोभन में अविचल, वह प्रखर आत्मबलिदान छिपा ।
इसमें पीड़ित मानवता के अपमानों का प्रतिशोध छिपा ;
युग - युग के अत्याचारों का उन्मूलक सात्त्विक क्रोध छिपा ।

इस रज ही में अरमानों का है वह सजीव इतिहास छिपा ;
देनेवाला दिनरात मृत्यु को अभय चुनौती, हास, छिपा ।
ममता के बन्धन तोड़, प्रणय में आग लगा, सुख को ठुकरा ,
जो प्रति - क्षण बढ़ता रहे इष्ट पथ पर, वह दृढ़ विश्वास छिपा ।

यह मरण ! अमरता तरस रही है इस पर वलि - वलि जाने को ,—
ऋषि युग - युग का तप - फल ठुकरा, आतुर हैं इसको पाने को ।
यह रज लिखती है जग - उर में भावी वलिदानों का लेखा ;
वलिपंथी वीरों के मस्तक उन्नत करती इसकी रेखा !

दलितों में छिपे हुए साहस ! ऐ पौरुष पीड़ित प्राणों में !
सुन लो ! कहती है चिता - भस्म—“है मुक्ति छिपी बलिदानों में ;
तुम धूमकेतु बन टूट पड़ो, यदि सह्य न हो बन्दी-जीवन ,
ज्वालागिरि बनकर फूट पड़ो, फैलो दारुण दावानल बन !”

सागर

❀

नदियों ने अपने 'कल-कल' में तेरे ही गाने गाये;
प्राणों के, मादक गोदी में तेरी, प्याले ढलकाये।
ऐ उन्मत्त, अमर क्रीड़ा से आंदोलित तेरा आँगन,
इठलाने दे वक्षःस्थल पर वसुधा का मादक यौवन।
भाव-भरी झोली सूनापन कैसे गले लगायेगा;
कैसे जग के ओछे पात्रों में तूफ़ान समायेगा?
सीमाहीन वेदना का अब हो असीम से आलिंगन;
ऐ सागर, अपनी लहरों में मिला प्रेमियों का जीवन।
निर्झर की झंकार, सरस स्वर, सरिता का 'कल-कल' सुकुमार,
गर्वोन्नत भूधर का गौरव, मत्त भूमितल का मद-भार
खींच-खींच कर हँसने वाला तेरा अविरल आकर्षण
लहराने दे इन लहरों में कवि का लहराता जीवन।
क्यों कहता है, ऊपर-ऊपर इन सब को आश्रय देगा;
अंतर्-तम के रत्न-कोश में चुन कर किसे छिपा लेगा?
अरे बता दे, अब तक मुझको तेरा प्रियतम है अज्ञात;
किसकी मिलन-प्रतीक्षा में तू उत्सुक रहता है दिन रात?

❀ ❀ ❀

पछतावा

मेरे उर का कल्मष होता उस सूने पथ का रजकण,
सारा अहंकार जग का वह जाता जिसमें दृग् - जल बन।
मेरे नयनों का प्रकाश उस कुटिया का दीपक होता,
जिसमें वैभव निर्धनता के चरण अश्रु बन कर धोता।
मेरे श्रवणों की उत्कंठा होती वह आशा - संदेश,
जिससे बुझता-हृदय किसी का फिर पाता नव-ज्योति विशेष।
मेरे उर का स्नेह सरसता होता उसके जीवन की,
जिस निर्धन का हृदय पार कर जाता हाट प्रलोभन की।
मेरे कर की तत्परता उस नौका की होती पतवार,
जिसे नये नाविक का साहस भँवरों में खेता मझधार।
मेरे निश्चय की सब दृढ़ता होती वह निविड़ालिंगन,
जिसमें व्यथित, पतित, पीड़ित फिर पाते खोया 'अपनापन'।
मेरी कर्कशता होती उस रण में तरुणों की हुंकार,
जिसमें दलित मनुजता उठती पशुबल का करने प्रतिकार।
मेरा जीवन जग-जीवन के कण-कण में वितरित होता;
मेरा 'सब-कुछ', हाय, न होता यदि 'मेरा', तो हित होता।

मरणोन्मुख

सुख-दुख, हास-अश्रु के जग से ऊपर उठ, होकर अविकार,
मुझे पूर्णता के मधुवन में कर लेने दो मुक्त विहार।
इस आनंद-उषा में जग का तम-प्रकाश छिप जाने दो,
जीवन के साधना-शिखर पर उत्सव आज मनाने दो।
आ पहुँचा आह्वान, शृंखला टूटी, साध मिटाने दो,
मेरी लघुता को 'विराट' की महिमा में मिल जाने दो।

यौवन

⊙

जीवन की इस मध्य-निशा में
विश्व मत्त बन जाता है;
मधु-ही-मधु सौरभ-ही-सौरभ
कण - कण में लहराता है।

मुँद जाता है धीरे - धीरे,
अलस नयन पलकों-सा 'भेद';
'दूर' पास आने लगता है,
'पर' अपना हो जाता है।

नाम-रूप की सीमा से हो-
जाती है सुंदरता मुक्त;
अनुभव की नीरव भाषा में
हृदय तृप्ति जतलाता है।

प्रेम - पंथ आलोकित करते
प्रति-पल जल-जल पलक-प्रदीप ;
प्राणों के धन—स्नेहकणों—का
'छोर' न आने पाता है।

'कुछ' खिलता रहता है नभ में ,
'कुछ' निर्झर में गाता है ;
सागर की लहरों में जीवन-
का 'कुछ' ज्वार उठाता है।

कुछ मद-सा, कुछ पागलपन-सा
करता है आँखों की ओट ;
इस मधु-ऋतु का अंत इसी से
ओझल होता जाता है।

● ● ●

मोहावृता

(१)

मिलन - मोह का मदिर आवरण बन जिसने था इसे छिपाया,
विरह - वह्नि बन प्रेम - हेम को यदि अब वह चमकाने आया,
क्यों न 'साधना' के मन्दिर में, सखि, तूने त्योहार मनाया ?

(२)

सुख का अस्थिर कोलाहल बन जिसने अब तक तुझे जगाया,
दुख की करुणांचल - छाया बन यदि अब वही सुलाने आया,
क्यों न गाढ़ निद्रा ली तूने, क्यों न सजनि, श्रम-क्लेश मिटाया ?

(३)

वैभव बनकर जिसने तेरे दोषों को, सखि, स्वैर बनाया,
निर्धनता बन वही गुणों की अगर परीक्षा लेने आया,
क्यों तूने संकोच - लाज के अवगुंठन में उन्हें छिपाया ?

(४)

क्षुद्र 'स्नेह' बन अब तक जिसने तेरा 'जीवन'-दीप जलाया,
वही असीम 'मरण'-तम बन यदि निविड़ालिंगन देने आया,
क्यों, सखि, काँप उठी तू भय से, क्यों न मिलन-शृंगार सजाया ?

प्रायश्चित्त

ज्वालामुखी देखकर मन में मत होना भयभीत,
एकाकी गौरव के उर की है यह दारुण दाह;
क्षुद्र कणों को हिलमिल जीवन करते देख व्यतीत
निर्जन में गिरि के वैभव के उर से उठती आह!
कहाँ वह सम सुख, दुख, श्रम, शील, सांत्वना, स्नेह, सरस संसार,
कहाँ उपेक्षित महिमा के उर का यह हाहाकार!

देख रजत-सा निर्झर विस्मित मत होना नादान,
यह है पश्चाताप हृदय को देता है जो चीर;
तृण-सा वह जाता पथ में पड़ अहंकार-व्यवधान,
कल्मष धुल जाते, हो जाती हलकी उर की पीर!
विभव के पापों की सह आग द्रवति होता है जो निरुपाय,
फूट-फूटकर वज्र-हृदय भी रो पड़ता है हाय!

कालिंदी को देख चकित मत होना बारंबार,
  प्रायश्चित्त, सतत सेवा-व्रत, है यह आत्म-प्रसाद,
कभी न रुकती उसकी गति, स्मृति का जिसको आधार;
  'छिप जाये अगले सुकृतों में पिछला गर्व, प्रमाद!'—
    इसी धुन में देता है विश्व भूत-हित पर निज जीवन वार,
    यही सोच गिरि ने यह धारा जग को दी उपहार!

❁ ❁ ❁

नूतन और पुरातन

सजनि, शिशिर आया, वन-उपवन, देखो, त्रस्त हुए तत्काल;
काँप उठे पीले पत्ते—'अब छूटेगी तरुवर की डाल!'
एक-दूसरे से कहते हैं—"छोड़ो अब ममता-माया,
जीवन का अवसान-सँदेसा निष्ठुर परिवर्तन लाया!
प्रबल वायु के झोंकों में मिलकर उड़कर होकर निर्मूल,
बनना पड़े एक दिन हम को दूर विजन के पथ की धूल,
इसके पूर्व, चलो, झड़कर भी, हम इतना-सा काम करें,
जब तक आय वसंत, विटप के चरणों में विश्राम करें;
आने वाले नवल पल्लवों का, फिर, कर स्वागत-सत्कार,
लेखा गत जीवन की त्रुटियों का दे जायँ पुकार-पुकार;
कह जावें—'हो नव वसंत यह तुम को सुखकर-श्रेयस्कर,
पर, प्यारो, यह भूल न जाना,—जीवन सब का है नश्वर!

जिसमें जीने की सार्थकता, जिसमें खिलने का संमान,
उस सेवा की सरस साधना का प्रति-पल रखना तुम ध्यान;
हारे-थके बटोही को तुम, हरे-भरे यौवन पर फूल,
हृदय खोलकर शीतल छाया देना कहीं न जाना भूल;
खेल-खेल में खो न बैठना उर का सब संबल अनजान,
कहीं अन्त में रह न जायँ दृग् में आँसू, उर में अरमान;
कहीं न अगला शिशिर अचानक आ तुम से यह कहलाये—
'बीत गया पलकों में जीवन, हाय, न कुछ करने पाये' !"
और इधर अपना भी तो, सखि, जीवन-लेख समाप्त हुआ;
नयनों का धन चुका, न प्राणों का संचय पर्याप्त हुआ!
निर्जन वन में लुटे पथिक-सी, विफल कलम गतिहीन हुई,
इष्ट-लाभ-आशा की अन्तिम रेखा भी अब क्षीण हुई;
ठिठक गईं कंपित अंगुलियाँ, थक बैठा सहचर उत्साह,
अब न प्रेरणा और उमंगें दिखलातीं आगे की राह!
लोभ-मोह से लाभ? हमें अब माया-ममता से क्या काम?
चलो, लगा दें, प्रिये, अधूरे ही आशय पर पूर्ण-विराम!

अगणित जीवन गाथाएँ जिस पर लिख हारे गुणी अनन्त,
किन्तु, न अब तक आदिकाल से मिला किसी को जिसका अंत,
उस अनन्त पट के चरणों में कर लें अंतिम बार प्रणाम,
और असीम नील अंबर की छाया में क्षण-भर विश्राम;
फिर, आगे न सही, पीछे ही, मुड़कर, एक दृष्टि लें डाल,
और क्षितिज पर आहों से लिख छोड़ें गत जीवन का हाल;
अमर रहे त्रुटियों का लेखा, यह अपूर्णता का इतिहास;
गूँजे सदा वायुमंडल में यह पछतावा, ये उच्छ्वास!
सुनें महामानव भविष्य के यह अतीत की वाणी क्षीण,
जब आरंभ किया चाहें इस पट पर जीवन-लेख नवीन—
"स्वागत, नवयुवको, जीवन की क्रांति, विश्व के नव मधुमास!
काटो जीर्ण जरा के बंधन, भर दो वसुधा में उल्लास!
हमें कुचलकर बढ़ो, किन्तु, उस बढ़ने पर मत फूलो तुम,
हमें भूल जाओ, पर त्रुटियों को न हमारी भूलो तुम;
उन से कुछ लो, पूर्ण बनो तुम, प्यारो, युग-निर्माण करो;
मानवता के चरम लक्ष्य का प्रति-क्षण अनुसन्धान करो!

है अशेष यात्रा-पथ यह जग, प्रति - पल यहाँ कर्म अविराम ;
जीवन एक अनन्त लेख है, गति ही है जिसका विश्राम ।

हे चिरजाग्रत, उर में अंकित कर रखना यह अमर विचार—
'अपनी सीमा के बाहर भी उस विराट का है विस्तार' ।

ओछे अक्षर तुम्हें न अपनी माया में लें भुला अजान,
इस पट की निस्सीम परिधि पर रहे तुम्हारा प्रतिपल ध्यान ;

खेल - खेल में कहीं बीच ही में हो जाय न अवधि तमाम ;
रहे अधूरा ही आशय, आ पहुँचे सहसा पूर्ण-विराम !"

● ● ●

राखी के उत्तर में

बहन, विश्व का वैभव तेरी राखी पर वारेगा लाल;
पर, है आज अकिंचनता पर कुंठित यह भाई कंगाल।
ये अनुराग - राग से रंजित तेरी राखी के दो तार,
ये ममता के मंजुल बंधन, ये उर के नीरव उद्गार।
मुझे विश्व के अखिल विभव से लगते हैं प्यारे, अनमोल;
इनसे बढ़कर क्या है जग में ? क्या दूँ इनके बदले ? बोल !
बहन, दासता के बंधन में जीवित तेरा भाई है;
तिरस्कार के अधिकारी को लगती व्यंग्य बधाई है।
प्रोत्साहन तू मुझे, रीझ किस गुण पर, देने आई है ?
इस राखी के साथ बधाई किस आशा से लाई है !
आज अकिंचनता ही मेरा संचित अमर खज़ाना है;
यदि गुण है तो यही कि मैंने निज लघुता को जाना है !

क्या इस पर ही आज बधाई पाने का अधिकारी हूँ ?
इस भोलेपन—इस उदारता पर तेरी, बलिहारी हूँ !
पर, तेरे 'सूत्रों' में बल है, आशा है, हैं अक्षय प्राण ;
तेरी 'रक्षा' में निर्भयता, तेरे 'बंधन' में वरदान !
जीवन-ज्योति लोचनों में है, कर में है नवयुग - निर्माण ;
चिर - कल्याण कुसुम - वर्षा है तेरी मंगलमय मुसकान !
संभव है, तेरी करुणांचल - छाया में करके विश्राम ,
तेरे उर के दिव्य स्नेह से होकर परिपोषित अभिराम ,
शक्तिहीन प्राणों में मेरे वह नव - जीवन - बल आवे ,
जो जग के पीड़ित - पतितों की सेवा का पथ दिखलावे ;
कभी बने सचमुच राखी का तेरा भाई अधिकारी ;
उज्ज्वल उच्चाकांक्षाएँ हों मूर्तिमती तेरी सारी !
है देवत्व प्रेम - पुष्पों की वर्षा से पाता पाषाण ;
संभव है भावना बहन की भाई को भी करे महान ;
देवि, दीनता - लघुता मेरी, पाकर पावन पुण्य - प्रवाह ,
तेरी प्रबल प्रेम - गंगा में मिलकर बन जावे उत्साह !

❁ ❁ ❁

सुख - दुख के साथी

❀

चाहे जीवन में, मधु-ही-मधु बनकर, भर जाना, हे नाथ,
किंतु, हृदय में कर्कश - दृढ़ता बनकर, रहना प्रति - क्षण साथ;
जिससे, हारूँ न मैं द्वंद्व जब हो दुर्बलता - पौरुष में,
मधु का सुख लूँ, पर, अस्तित्व न अपना खो बैठूँ उस में!
चाहे कुश - कंटक ही बनकर छा जाना जीवन - पथ पर,
पर, प्राणेश्वर, प्राणों में बस जाना अक्षय मधु बन कर;
जिससे, घोर निराशा में भी आशा का मुख म्लान न हो,
सह्य बने संघर्ष, सरसता उर की अन्तर्धान न हो।

❀ ❀ ❀

बलि की साध

◉

'आँखों का तारा' आकुल है—रण में सहे दुधारा,
इच्छा है यह—फिरे 'हृदयधन' वन - वन मारा - मारा;
'प्रियतम' चाह रहा है होना उस पथ पर कुरबान,
जिसपर दलित, दीन, दुखियों का लुटता है संमान!
हुआ तुम्हारे इस 'अपने' को अब सारा जग अपना,
जगे तुम्हारा प्रेम, छोड़कर अब सीमा का सपना!

जीवन - पथ की बाधाओं को बार - बार ठुकराने दो,
चेतन हूँ; उठने, चलने दो, बढ़ने, ठोकर खाने दो;
साध कर्मकोलाहल में इस यौवन को मिट जाने दो,
जीवित जग के संघर्षों में पड़ने मुझको जाने दो!

कबतक जड़ निर्जीव मोह में पड़ा रहूँ मन मारे!
कबतक मुझे मोम का पुतला बना रखोगे, प्यारे!

◉ ◉ ◉

सुख और स्नेह

हैं विभिन्न जितने पथ जग में सुख-दुख-धैर्य-प्रलोभन-मय,
तेरे चरणों की छाया में होता है उन सब का लय;
किन्तु, नाथ, तेरा जिससे कुछ अधिक स्नेह का नाता है,
उसका पथ तू कुश-कंटक से अधिक कठोर बनाता है;
काम नहीं कुसुमों का जिसमें कुछ, कुंजों का नाम नहीं,
सुनने को संगीत न मिलता, लेने को विश्राम नहीं।
जितना ही वह पथिक कठिन पथ पर विराग है दिखलाता,
तेरी ओर, बिना जाने, है उतना ही बढ़ता जाता;
फिर भी पथ की निर्ममता को तेरी 'निष्ठुरता' कहकर
देता है वह दोष तुझे, तू हँसता उस भोलेपन पर!
तेरे निकट पहुँच जब पाता करुणांचल में पूर्ण-विराम,
तब कृतज्ञ अन्तर् से तुझ को करता बारंबार प्रणाम।

पर, लीलामय, तू न समझता जिसे स्नेह का अधिकारी,
उसके पथ पर नंदनवन की श्री बिखरा देता सारी।
तुझे भूल, तेरे पथ ही को वह आराध्य बनाता है,
सुख पर वार साधना सारी, पथ ही में रम जाता है।
नश्वरता के मोल अमरता का वह सौदा—पागलपन!
विभव - अलस पलकों में जीवन के कट जाते सक्रिय क्षण!
मिलन मुहूर्त बीत जाने पर भ्रांत पथिक पछताता है;
सुख का शिशिर काँप उठता, पर, स्नेह - वसंत न आता है!

❁ ❁ ❁

झाँसीवाली रानी की समाधि पर

मृत्युंजय वीरों के उज्ज्वल हृदय - देश की रानी !
जग के बलि - पंथी यौवन ने जानी, अब, पहचानी !
चाहे अगम कहें उस पथ को जरा - जर्जरित ज्ञानी ,
तुम पर संकट - स्नेही तरुणों की दुनिया दीवानी !
मरदानी ! थी स्वाभिमान पर मर मिटने की ठानी ;
याद रखेंगे युग - युग तक वे मर्द खड्ग का पानी !
वह नारीत्व, झुका जिसके पद पर पौरुष अभिमानी !
वह संग्राम, देख जिसको थी स्तब्ध विश्व की वाणी !

आज भी स्मरण तुम्हारा, देवि, मचा देता हड़कंप प्रचंड ;
विजय के कोहनूर कर म्लान, झुका देता मस्तक उद्दंड !
स्वप्न में सहसा तुमको देख डगमगाते रक्षित भू-खंड ;
त्रस्त होते विस्तृत साम्राज्य, डोलते सिंहासन दुर्दंड !
काँप उठते मिथ्या इतिहास, धसकते युग-युग के पाखंड ;
थरथराते हाथों से छूट भूमि पर गिरते शासन - दंड !
प्रकंपित कर महलों की नींव, दर्प दुर्गों का शत-शत खंड ,
जाग उठता स्मृतियों के साथ तुम्हारा भय, आतंक अखंड !

निराशा की वह काली निशा, मोह का विष, छल का वह जाल !
काँप उठता था भय से मूक मनुजता का जर्जर कंकाल !
लालसा की वह जिह्वा लोल, लोभ का वह मुख क्रूर, कराल,
ग्रस्त करता जाता था सरल श्रमों का संचित विभव विशाल !
अचानक, मर मिटने को अभी उठे थे कुछ 'माई के लाल',
अभी सुलगे ही थे दो - चार अग्निकण बिखरे, लघु, बेहाल,
तभी तुम बन प्रलयाग्नि प्रचंड, धधक, कण-कण में छा, तत्काल,
भस्म करने आईं वह मोह, छिन्न करने आईं वह जाल !

बुँदेलों का वह गौरव, झुका चरणतल पर जिसके संसार,
खँडहरों में सहता था क्षुद्र रजकणों के कटु व्यंग्य - प्रहार !
विगत बलिदानों की स्मृति वहा ले गई क्रूर काल की धार;
स्वप्न के स्वर - सी सहसा कभी-कभी सुन पड़ती एक पुकार।
सुना जिस दिन तुमने वह वीर - भूमि के उर का हाहाकार,
चल पड़ीं दुहराने इतिहास, सत्य पर अपना 'सब-कुछ' वार;
उसी दिन वह युग तुम में चकित विश्व ने देखा फिर साकार,
मृत्यु-मुख में जीवन की हँसी खेलती थी जिसमें अविकार।

वह निर्दोष हृदय नारी का, वह निष्ठुर संधान !
मर्मस्थल पर चोट ! अकारण स्वत्वहरण की बान !
शव या भस्मराशि ही थी सह सकती वह अपमान;
तुम से तो वीरत्व माँगता था साहस का दान !
गिरि-सी दृढ़ता, आन वज्र-सी, वे विद्युत्-से प्राण !
उष्ण रक्त का वह उबाल, था खेल जिसे बलिदान !
असिधारा-अंगार-मरण-पथ से जिसकी पहचान,
तुम्हें चुनौती ! क्या समझी थी कूटनीति नादान !

प्रलय था या था वह संघर्ष, हिल उठे जिससे कायर प्राण;
म्यान में अलस विभव की स्वर्णजटित असि का काँपा अभिमान !
तुम्हारा अविरत गति से सर्वनाश-पथ पर निःशंक प्रयाण,
अपरिचित जहाँ प्राण का मोह, देह का भान, कष्ट का ज्ञान !
हथेली पर सर, कर में खड्ग, हृदय में था बस यह अरमान—
'प्राण जायें, पर जग में अचल रहे लक्ष्मीबाई की आन !'
विश्व-तप की तुम उज्ज्वल ज्योति, विश्व-यौवन की तुम अभिमान !
उच्च जग-बलि-मंदिर का कलश तुम्हारी द्युति से है द्युतिमान !

वे मुठभेड़ें, पड़ें प्राण के जिन में पद - पद पर लाले !
वे घमसान, मृत्यु का खप्पर क्षण-क्षण में भरने वाले !
तीर, तोप, बंदूक, गोलियाँ, तलवारें, बरछी, भाले,
पानीदार तुरंग, तड़ित् - गति रथ, गिरि - से गज मतवाले,
सज्ज मोरचों पर सैनिकगण पिये युद्ध - मद के प्याले;
माना, उनकी ओर अधिक थे प्रतिफल पर मरनेवाले !
सब साधन थे; कैसे पाते, पर, तुम से लड़ने वाले—
आत्म - त्याग का तेज, सत्य की वह दृढ़तम निष्ठा, बाले !

विश्व कहता है जिसको 'मरण', तुम्हारा था 'अंतिम बलिदान';
खिली थी उन अधरों पर विषम क्षणों में 'दाता की मुसकान' !
रक्त - कुंकुम से करके तिलक, शुभ्र खड्गों का तान वितान,
गोलियों के बरसाकर फूल, बढ़ा शर - कर, गा गौरव - गान,
युद्ध - मंडप में माँगा विनत मृत्यु - याचक ने तुम से दान;
तुम्हें कब था प्राणों का मोह ! मुसकराकर दे डाले प्राण !
आह, वह सब से महँगा दान, घटा जिससे 'बलि' का अभिमान;
तुम्हारा गौरव, जग का रुदन, स्फूर्ति तरुणों की, कवि का गान !

बोलो तो इतिहास विश्व के ! अपनी गाँठ टटोलो तो !
छिपी हुई है क्या कोई निधि ऐसी ? अंचल खोलो तो !
आहत देह हुई, पर, भावों ने चिर अमृत - तत्त्व पाया।
आत्मसमर्पण ? छिः, बंधन में रह सकती थी वह काया ?
बोली रानी—"प्रलय - वह्नि में मुझे मिलेगा गंगाजल ;
यह प्रचंड तृणराशि सुलग कर मेरी सेज बने शीतल !"
विश्वशांति ! उस अंतिम निद्रा को अपने से तोलो तो !
जग के त्याग ! करोगे स्पर्द्धा ? उस 'जौहर' से ? बोलो तो !

❖ ❖ ❖ ❖

एकाकी नीरव निर्जन में किये कौन से व्रत - तप - साधन ?—
प्रस्तर - खंडो ! मिला तुम्हें यह रत्नों से भी महँगा जीवन !
नभचुंबी प्रासाद खर्व, चिरमहिमामय देवालय दीन,
तुम्हें देख कर दुर्ग समझते अपने को रजकण से हीन !
ऐ सब से विश्वस्त रक्षको, तुम सब से गौरवशाली !
तुम पर अर्पित अखिल - राष्ट्र - धन इस समाधि की रखवाली,
देखो, जब तक यहाँ तुम्हारा शेष रहे अंतिम रजकण,
उस महान बलि की स्मृति - रक्षा पर उत्सर्ग करे जीवन !

यहीं, यहीं, हाँ, इसी विजन की अधसूखी सरिता के तीर,
तेज - पुंज में लीन हो गया वह तेजस्वी विमल शरीर!
वह बलिदान सदा को अंकित हुआ राष्ट्र के प्राणों में;
बसा प्रेरणा बन कर जीवन - नायक कवि के गानों में।
आओ, एक-एक कर, अगणित युगो! पथिक बनकर आओ;
उसकी स्मृति की छाया में रुक, श्रद्धा - पुष्प चढ़ा जाओ!
देकर प्राण, देश को जिसने महाप्राणता दे डाली,
इस समाधि में शांत, सुप्त है वही अमर झाँसीवाली!

उठो वीर भगिनी के, जननी के हे जीवनधन, जागो!
उस महान नारी की स्मृति में त्रिभुवन के यौवन, जागो!
इस मंगल - प्रभात में जर्जर जग के नवजीवन, जागो!
जागो, हे नारीत्व विश्व के, जप - तप - व्रत - साधन, जागो!
उठो, राष्ट्र के तेज, जला दो शत - शत कायरता - बंधन!
'उपकरणों पर आत्म - त्याग की—साहस की जय' है जीवन।
तरुणो, सुनो, दे रही रानी स्मरण - लोक से मंत्र महान—
"सत्य और स्वत्वों की रक्षा संभव नहीं बिना बलिदान!"

❀ ❀ ❀

क्षणिकाएँ

(कुछ विखरे भाव)

गूँज उठी हैं दशों दिशाएँ, सप्त सिन्धु, भूगोल, खगोल;
अब तो पलकें खोल 'पुरातन' ! तू भी 'नूतन' की जय बोल !

❖ ❖ ❖ ❖

अरुणोदय के पहले मिटता है तारों का हास;
'मिटना' ही है अखिल विश्व के 'बनने' का इतिहास।

❖ ❖ ❖ ❖

सर्वनाश की रुद्रमूर्ति के स्वागत में आनाकानी!
हाय, बीज के लोभ! फिर गया फल की आशा पर पानी।

❖ ❖ ❖ ❖

जैसे लघु लहरों के नीचे सोया सिन्धु गहन है,
वैसे जीवन के श्वासों में छिपा गभीर मरण है।

❖ ❖ ❖ ❖

आलोचक, तुझसे क्या सीखूँ, यदि, जो केवल 'त्रुटियाँ' मेरी,
बनता है तू 'पूर्ण' उन्हीं से, चरम साधना हैं वे तेरी।

❖ ❖ ❖ ❖
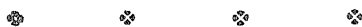
कहा खड्ग ने मुक्त पवन से—"कर दूँगा मैं तेरा नाश!"
बोला पवन—"कहाँ से, भोले, फिर तेरा प्रभु लेगा श्वास?"

❖ ❖ ❖ ❖

कहा विभव ने बड़े दर्प से—"सारे शत्रु हुए निर्मूल!"
निर्दोषों का रक्त नींव में से कह उठा—"मुझे मत भूल!"

❖ ❖ ❖ ❖

जहाँ अभयता की वीणा ले 'मृत्यु' करेगी गान,
होगी वहीं जगत् की 'जीवन' से पहली पहचान।

❖ ❖ ❖ ❖

जिनके द्वार भिखारी थे कल, आज उन्हीं के हो बन्धन!
कहीं भूल सकते हैं बन्दी, अतिथि, तुम्हारा परिवर्तन!

❖ ❖ ❖ ❖

क्या जाने विद्युत् - रेखा, जो कर जाती इनका उपहास,
कैसे पल - पल तिल - तिल जल - जल देते जग को दीप प्रकाश।

❖ ❖ ❖ ❖

छोड़ पुष्प-पथ, कुश - काँटों पर चलना है जिसको प्यारा,
उस यौवन के एक निमिष पर वारूँ यह जीवन सारा!

❖ ❖ ❖ ❖

अन्तःपुर के चतुर कीर, मत समझ—'मधुर स्वर मेरा है';
वह तो बिका पराये हाथों, केवल बन्धन तेरा है।

❖ ❖ ❖ ❖

जिसे आयु-भर तू निज कर से जीवन-अमृत पिलाता है,
मरण-हलाहल का प्याला भी वह हँसकर पी जाता है।

❖ ❖ ❖ ❖

कह 'दासों' के देव! भक्त से—"भुला न इन मनुहारों में;
चुन नैवेद्य प्रहारों में अब, मन्दिर कारागारों में!"

❖ ❖ ❖ ❖

जग! अस्तित्व सरस है तेरा; अस्थिर कितना, पर, है!
जन्म-मरण के संधिस्थल पर केवल एक लहर है।

❖ ❖ ❖ ❖

प्रभो, जन्म देना मुझ को भी सैनिक का या तारे का,
जिसके जीवन और मरण में अंतर एक 'इशारे' का।

❖ ❖ ❖ ❖

कवि की मर्मवेदना को जब स्वर में बहते पाते हैं,
नाद-वेद के व्याख्याता ऋषि नये विधान बनाते हैं।

● ● ●

कहानी

अभिलाषा

❁

उस निकुंज का बनूँ विहंगम ,
या, उस पथ की रेणु बनूँ ,
उस मधुवन की धेनु बनूँ , या ,
उन अधरों की वेणु बनूँ ,
मुझे नहीं इसकी अभिलाषा ,
नृत्य बनूँ या गान बनूँ ,
राधा की चंचल चितवन, या ,
मोहन की मुसकान बनूँ ।
मुझे बनाना, प्रभो, प्रतिध्वनि ,
उस निकुंज में रम जाऊँ ,
जिसमें विरह - विकल राधा को
आँसू बरसाते पाऊँ ;
जब सकंप सुकुमार कंठ से
निकले—"हे प्रियतम, आओ !"
करूँ समर्थन उस दुखिया का ,
मैं, कहकर—"आओ, आओ !"

❁ ❁ ❁

प्रभात - तारा

जीवन - ज्योति तुम्हीं हो क्या वह, तुम्हीं प्रतीक्षापथ के दीप,
जो स्मृति के सपनों से जाग्रत, जो उर के अत्यन्त समीप,
निशि के पट की अभय ओट में करते थे झिलमिल आलोक,
अपलक जिसे निहारा करती स्वर्गंगा लहरों को रोक?

सुख पागल था जहाँ, जहाँ मद में झूमा करता था शोक,
छोटी - सी लौ में जगमग थे स्नेहराज्य के तीनों लोक,
यह क्या वहीं अर्धमूर्च्छा - सी, चिन्ता - सी, पीड़ा - सी, हाय,
सूखे अधरों पर छाई है फीकी क्लांत हँसी असहाय!

कुम्हला जाती है अपनी ही डाली पर जो अपने - आप,
उस तुषार भयकंपित कोमल बाल - चमेली - से चुपचाप
क्यों मुरझाये - से जाते हो अपने ही उर में अज्ञात?
तुम न बुझोगे तो वसुधा पर क्या होगा ही नहीं प्रभात?

निशि - अंचल कंपित करने कब आया अभी प्रभात पवन?
ठहरो, क्यों होते जाते हो पहले ही से मलिनवदन!
और घड़ी - भर हँस लो, खिल लो, आलोकित हो लो भाई!
अभी कहाँ विहगों का कलरव, अभी कहाँ ऊषा आई!

निर्धन का अंतःपुर

फिर आँसू ! क्या आज हृदय में
प्रलय-पयोधि छिपा लाईं !
प्रिये, भार लेकर उर में क्यों
इस सूने घर में आईं !

निर्धन की यह जीवन-नौका,
देखो, है विचलित होती,
ऐ मेरी पतवार, न ढलको
तुम भी यों बन-बन मोती !

करुणाकण बन मलिन विश्व के
कल्मष धोने वाले हैं !
स्नेह-विंदु बन ये ऋषियों के
जप-तप खोने वाले हैं !

इन्हें एक निर्धन के उर का
धैर्य बहाने लाईं आज!
अपनी महिमा घटी देख, यह
देखो, इनको आई लाज!

हाँ, यों पोंछो, सजनि, हृदय की
दुर्लभ अभिलाषा के कण!
सूखी आँखों से फिर अपना
झलक उठे सूना जीवन!

❀ ❀ ❀

अंतिम क्षण

⊛

(१)

निर्मम हैं, सखि, अंतिम क्षण !
हे अभागिनी, हे निर्धन, तू
जिसे समझकर अपना धन,
बूँद-बूँद संचय करती थी
प्यासे प्राणों से प्रति-क्षण,
किसका खा आघात निमिष में
बिखर गया तेरा जीवन ?
हे अभागिनी हे निर्धन !
क्या धन छीन भिखारिन का जग
तारों से जड़ लेगा तन ?
इंद्रधनुष के रंगों में क्या
रँग लेगा वह, सजनि, वसन ?
यह भी क्या निष्ठुर उमंग है,
यह भी क्या निर्दय पीड़न !

क्या इस 'अर्घ' विना वसुधा का
नीरस रह जाता पूजन ?
जिसे प्यार करते हैं हम, क्यों—
उसे चाहता है त्रिभुवन ?
जीवन है विडंवना जग में,
स्नेह रुदन को आमंत्रण।
कुसमय है, हैं शून्य दिशाएँ,
कव तक खोजेगी कण - कण ?
फटे वस्त्र, बिखरे बालों पर
नहीं दया करता निर्जन !
अरी बावली, बदल सकेगा
अमर सत्य तेरा रोदन ?—
'एक बार बालू में मिल फिर
नहीं हाथ आता जीवन' !
निर्मम हैं, सखि, अंतिम क्षण !

(२)

निर्मम हैं, सखि, अंतिम क्षण !

इन दो तारों में ममता का

क्या रहस्य था गूढ़ गहन ;

कितना मधु, कितनी मादकता

इनमें की तूने सिंचन !

हाय, हृदय का हाल किसी का

कभी, सजनि, किसने जाना ?

कौन बँटाने आया जग में

किसी हृदय का मूक रुदन !

यह तेरी छोटी - सी वीणा ,

प्राणों से प्रिय ये मृदु तार ,

जिन्हें कभी झंकृत करता था

छूकर केवल मृदुल पवन ,

किसी करुणतम चिरनिद्रा में ,

हाय, इन्होंने किया शयन ,

थक जायेंगी आज उँगलियाँ

किंतु न लौटेगा कंपन ,

वह कंपन जिससे बहता था
सहज सप्त - स्वर का निर्झर ,
वह कंपन जिस पर न्योछावर
था यह मतवाला त्रिभुवन ।

आज बता दे अमर गायिके ,
तेरा स्वर - आधार कहाँ ?
कौन लुटेरा लूट ले गया
जीवन के वे सस्वर क्षण ?

बार - बार असफल होती है
जोड़ - जोड़ क्यों टूटे तार ,
वीणा पर क्यों गड़े हुए हैं
ये सूखे अपलक लोचन ?

इस निर्जन में सब निष्ठुर हैं ;
सुन ले कहता है कण - कण—
"एक बार जो टूट गया, सो—
जुड़ न सकेगा आजीवन" !

निर्मम हैं, सखि, अंतिम क्षण !

● ● ●

प्रकाश की प्रार्थना

इच्छा नहीं महल में शोभित
करे मुझे अनुरक्त महीप;
चाह नहीं है, नाथ, बनूँ मैं
नील गगन का तारक-दीप;

ऊषा का आलोक बनूँ, या
ज्वालागिरि का स्रोत बनूँ,
मुझे नहीं इसकी अभिलाषा,
विद्युत् या खद्योत बनूँ;

बनूँ न चन्द्र, न नभ के कोने-
कोने में बिखराऊँ हास,
मेरे आस-पास तारागण
मोहित होकर रचें न रास।

एक प्रकाशित रखनेवाली
वत्सल वृद्धा रहे समीप,
मुझे बनाना निर्जन वन की
जीर्ण कुटी का झिलमिल दीप;

काजल-सी रजनी में कंपित
आशा की पतवार बनूँ,
भूले-भटके किसी पथिक का
एकमात्र आधार बनूँ।

व्यथित विश्व से

पल्लव - पल्लव का यौवन, वह डाल - डाल की हरियाली,
वह फल - फूलों का सुहाग, वह उसकी अपलक रखवाली,
वह सौरभ का स्वर्ग, अरुणिमा, वह मोहक मधु की प्याली,
लूट ले गया काल - शिशिर, कण - कण लगता ख़ाली - ख़ाली!

रूठा वनमाली, युग - युग का भूला पल में प्यार - दुलार!
अरे, एक सुन्दर सपने - सा लीन हुआ वह मधु - व्यापार!
कोकिल और कलापी के कलरव से मुखर दिगंत नहीं;
सूने जग - उपवन! अब तुझमें वर्षा नहीं, वसंत नहीं!

मिला न पाया था मैं तेरे सुख के स्वर में अपना स्वर,
अब तक थे हम दूर - दूर, अब दूर हुआ अपना अन्तर;
आ, अब मेरी बारी आई, अरे उपेक्षित, हो न निराश;
बिखरा दूँ तुझपर प्राणों की करुणा का अक्षय मधुमास!

अंतिम मनुहार

इस उर की निशा सजाने
शारद शशि से तुम आये,
सीकर - सुकुमार करों में
संताप छिपाकर लाये।

छूते ही इन पलकों को,
कैसा जादू था डाला,
चेतना झुकी पड़ती थी,
था रोम - रोम मतवाला!

छवि - चिनगारी नयनों ने
क्यों उर में, हाय, छिपाई,
सुविधा के नन्दनवन में
स्वेच्छा से आग लगाई!

मृदु लपटों की लहरों ने
भोला अनुराग लुभाया,
सर्वस्व हृदय का लुटता
था स्मित अधरों पर छाया!

तुम दूर खड़े हँसते थे
अपनी जय पर उपवन में,
मैं मुग्ध पराजय पर था
जब जीवन के निर्जन में।

स्मृति के पलने में पलकर
सर्वस्व बनी थी ज्वाला,
भरपूर हुआ किस मद से
मेरी पीड़ा का प्याला?

हलके-हलके यह ज्वाला
सुलगा करती अंतर् में,
फिर क्या था, नश्वर जग में
हो जाता अजर अमर मैं।

पर, खेल-खेल में तुमने
करुणा की फूँक लगाई,
इस दीन हृदय की ज्वाला
पल-भर में हाय बुझाई।

अंतिम मनुहार हृदय की,
इतनी-सी विनय हमारी,
क्या इन निर्मम घड़ियों में
मानेगी हँसी तुम्हारी?

कौतूहल-वश जब जाओ
क्रीड़ा की साध मिटाने,
तुम और किसी पागल के
अंतर् की आग बुझाने,

अधजली भस्म यह लेकर
इन असफल अरमानों की,
जीवित समाधि रच देना
तुम इन पीड़ित प्राणों की,

सूखे सुमनों की करुणा
सिसके जिसके कण-कण में,
उस नीरव उजड़े वन में,
उस एकाकी निर्जन में।

❀ ❀ ❀

सशंक स्वागत

⊛

वे दिन, जब फूलों में मिल खिल-खिल उठते थे पुलकित प्राण,
वे दिन, जब लहरों में घुल था इठलाया करता अभिमान,
वे दिन, जब झाँका करते थे रह-रह रवि-शशि से हृदयेश,
वे दिन, जब उतरा करते थे किरणों के पथ से संदेश,
हाय, भूल जाने का वे दिन—वे क्षण, दो कोई वरदान;
इस समाधि के रखवाले को प्यारा लगता है सुनसान!
दुर्दिन में है अंधकार इस उर की धड़कन का आधार,
नीरवता जीवन की निधि है, टूटी कुटिया है संसार।
बंधु, कभी इस निर्जन पथ से आही निकलो यदि अनजान,
गोपन की गाँठें मत छूना, अमर व्यथा का मर्मस्थान।
तन की तपन, थकान पगों की, पथ का श्रम खोने आना;
स्वागत है, चाहो तो तुम भी नीरव निशा बिता जाना।
किंतु, किसी मधुमय अतीत की स्मृति उर की सीमा कर पार,
सहसा, थिरक उठे न तुम्हारी तानों में मिल मेरे द्वार।
पथिक, अमावस्या की निशि में गा उठना मत 'दीपक'-राग;
जग जायेगा जगमग द्युति से फिर उर का सोया अनुराग!

⊛ ⊛ ⊛

दुर्भिक्ष की राधा

मैं तो चाह रही हूँ वैभव,
उनके अंकासन का राज;
गली - गली गोकुल की गायें
तृण को तरस रही हैं आज।

मेरा तो है कंठ अकेला,
कहता—"कहाँ छिपे गोपाल!";
आकुल कोलाहल करते हैं
कितने कँगलों के कंकाल!

मेरी तो दोही आँखें हैं,
खोज रहीं पथ पर 'चितचोर';
कितनी सूखी आँखें अपलक
ताक रही हैं नभ की ओर!

बरसो घन, न मिलें जीवनधन,
चरणचिह्न मिट जाने दो!
कृश कृषकों को लुटी कुटी में
हँसकर दीप जलाने दो!

परिवर्तन

१

सुख के स्वर के स्वागत को है खुला हुआ श्रवणों का द्वार ;
किंतु, प्रवेश न कर पाती है दलित हृदय की करुण पुकार।
सब - कुछ देख - देख मन - ही - मन मंद - मंद हँसनेवाली
अंतर्जग को देख न पाती नयनों की पुतली काली।

संमोहन, वंचना, मोह है, प्यार नहीं है प्यारों में ;
जीवन है, पर, वेग नहीं है सुख - सरिता की धारों में।
छवि की सुंदर छाया में है अंधकार, विश्राम नहीं ;
पल - भर आकुलता है स्मृति में, तन्मयता का नाम नहीं।

उपकृति है, उत्सर्ग नहीं है अवनी के उपहारों में ;
केवल चमक, प्रकाश नहीं है नभ के चंचल तारों में।
मद है, पर वेदना नहीं है आकर्षण की तानों में ;
यौवन है, पर हृदय नहीं है जग की मधु - मुसकानों में।

रत्न नहीं, तारों की छाया ही चमकाता पारावार;
स्नेह नहीं है घन में, केवल रंग-बिरंगा है विस्तार।
करस्पर्श है मलयपवन में, पर, रोमांच नहीं होता;
फूलों में मधु है, पर मधुकर अब चेतना नहीं खोता।

अब भी सरस रसाल-डाल पर कोयल गा लेती है गान,
पर न विकल हो उठते उसकी तान-तान पर पीड़ित प्राण।
धड़कन में उर, कसक आह में, रहा न मनुहारों में प्यार;
कवि, तू ही है अटल अकेला, बदल गया सारा संसार!

हृदयविदारक क्रंदन में भी पीड़ा का कण शेष नहीं;
हाय, छलछलाते नयनों में भी करुणा का लेश नहीं।
देख, आज, इन झरनों में भी रहे न अंतर्-तम के गान,
ऊपर-ऊपर ही उठती हैं नदियों में लहरें नादान।

● ● ●

आज अचानक

जीवन की निश्शब्द निराशा-
में संगीत - सृजन कैसा ?
आशा के भस्मावशेष पर
स्वप्नों का नर्तन कैसा ?

सब कुछ खोकर अंधकार में
हँसता है जिसका संतोष,
उसके लुटे हुए अंचल में
कौन बाँधता है यह कोष ?

किसने उजड़ी हुई उमंगों-
पर वसंत बिखराया है ?
आज अचानक किसे हृदय का
मौन लूटना भाया है ?

किसका वैभव निर्धनता को
लज्जित करने आया है,
किसने तिमिराच्छन्न कुटी में
अपना दीप जलाया है ?

विधवा का निर्माल्य

मेरे सिंदुर-शून्य भाल-सा
जिसका शिखर कलश से हीन,
हवनकुंड की भस्म सुप्त हो,
सूना सिंहासन हो दीन;

जीवनहीन दिशाओं का हो
कोना-कोना बना उदास,
कण-कण से फूटे पड़ते हों
मौन निराशा के निःश्वास;

हो न शेष कुछ स्नेह दीप में,
बत्ती बुझती जाती हो,
"फूलो फलो!" कहाने कोई
कुलकामिनी न आती हो।

माली और पुजारी जिसकी
सूनी राह गये हों भूल,
उस मंदिर की रज में सूखे
यह मुरझाया जीवन-फूल!

होली

⊛

जीवन की वासंतिक निशि में
आने तो दे दीप्त प्रभात ;
क्यों सस्मित मादक नयनों से
स्वागत करता है अज्ञात ?

ऐ उदार, रहने दे, बूँदें
इधर रंग की तू मत डाल।
स्वयं हृदय इस अमर व्यथा से
बना रखा है मैंने लाल !

"धीरे-धीरे जल जाने दे"—
आज शिखा की है यह सीख ;
प्रेम, रंग, उन्माद और रस ,
उर-के-उर में, रखना सीख !

जलता है सर्वस्व किसी का ,
किसने स्वाहा बोली है ?
पागल बन न पतंग, व्यथित के -
हृदय-दीप की होली है !

⊛ ⊛ ⊛

अमोल मोती

पागल सौदागर, वैभव की
हाट लुटाकर, आया हूँ;
केवल जीवन की दो निधियाँ
नयनों में भर लाया हूँ।

रसिक ग्राहकों की गलियों में
लगा रहा हूँ मैं फेरी,
उचित मूल्य देकर ये निधियाँ
कोई भी ले लो मेरी!

करुणा के कितने कण संचित-
हैं, दिखला दो थैली खोल,
यदि ये दो प्रिय हृदय-सीप के
मोती लेना चाहो मोल।

व्यथित और वसंत

⊛

जगमग उषा जगाने आई, कलियों ने आँखें खोलीं;
ऋतुपति का संदेश सुनाने मधुवन में कोयल बोलीं।
जब रवि की कोमल किरणों ने स्वर्णराशि जल में घोली,
उस वसंत में किसी अभागे उर में जलती थी होली।
बिखरे चमचम ओसकणों में कितने मृदु मोती अनमोल,
चूमे अलियों ने आ फूलों के जब गाल गुलाबी गोल।
झरनों की निस्सीम रागिनी थी पल-पल पुलकित होती,
वहीं दुखी की दो आँखें खो बैठी थीं रज में मोती

जल से किरण, भ्रमर फूलों से, नदियों से निर्झर सुकुमार,
मलयानिल सौरभ-संचय से, हरियाली से ओस उदार,
मिलते थे जब प्रकृति-प्रिया से सुंदर वासंतिक शृंगार,
आशा-अंकुर से पीड़ित के सहसा आकर मिला तुषार।
रंग-बिरंगे पंखोंवाले चंचल-चित्त विहंगम-वृंद,
मोद-भरे नभ की गोदी में गाते जाते थे सानंद।
जहाँ विश्वसंगीत हो रहा था धीरे-धीरे साकार,
वहीं अभागे अंतर् में थी करुणा करती हाहाकार।

कण-कण में मादकता छाई, वारि-वारि में वीचि-विलास;
पल्लव-पल्लव में हरियाली, फूल - फूल में फूला हास ।
उस मधुवन के रोम-रोम से फूट पड़े सुरभित उच्छ्वास;
पर, मधुमास उदास हृदय में भर न सका रस का उल्लास।
अलियों के कलरव में मिलकर कलियों से निकला उद्‌गार—
"कितना मोहक, कितना मादक, कितना मधुमय है संसार!"
बालारुण को किरणें बोलीं—"कितना सुखमय है संसार!"
कहा किसी के उच्छ्वासों ने—"कितना निर्दय है संसार!"

सारा मधुवन मुग्ध हुआ था माधव की मधुमाया में ;
एक अभागा हृदय व्यथित था रंजित नभ की छाया में ।
कभी कसक हलकी करने को ले लेता था एक उसास,
कभी नयन की नीरव करुणा करती थी सुख का उपहास !
धीरे-धीरे विकल हृदय ने पीड़ित स्वर में कहा पुकार—
"असहनीय दुख पर वसुधा का यह कैसा अद्‌भुत उपचार!
अहो विश्व के निर्मम वैभव, हृदयहीन मधु के व्यापार !
पीड़ित प्राणों पर करते हो क्यों नीरस रस की बौछार ?

तिरस्कार है हार हृदय का, अंधकार अंतर् का हास,
अमर अभाग्य प्रकाश प्रणय का, प्यास-त्रास-उच्छ्वास विलास,
जलन साधना है जीवन की, व्यथा विभव, बंधन वरदान,
करुणा के कण जीवनधन हैं, क्रंदन है जिसका मधुगान,
उस दुखिया के दलित हृदय को और दबाते क्यों हो, हाय !
व्यर्थ भार - उपहार प्यार इस पर बरसाते क्यों हो, हाय !
छुओ न मधुमय मादक कर से, करो न करुणा को उद्भ्रांत,
व्यथित हृदय के धीमे स्वर को यहीं सिसकने दो एकांत।

कितनी कसक, वेदना कितनी, कितना दुख है, कितना दाह !
करुण - कथा इस भग्न हृदय की कैसे किसे सुनाऊँ, आह !
'हंत अभागे' ! कह केवल दो आँसू ढालेगा संसार,
इतनी-सी करुणा के बदले कैसे बाँटूँ उर का भार,
वही भार जो कंगालों की निधियों का होता है सार,
वही भार जिसको पाने को ललचाया करता है प्यार,
वही भार केवल दुखिया का जिस पर होता है अधिकार,
वही भार जिसके गोपन में आता है आनन्द अपार।

मेरा जीवन जिस अभाग्य की करुणामयी कहानी है,
कैसे कहूँ, उसे कहने में विवश व्यथा की वाणी है।
मेरा परिचय पूछ रहा है क्यों उत्सुक जलकण प्रत्येक,
जग की ठुकराई करुणा का पीड़ित कण हूँ मैं भी एक।
खिलो कुसुम कुल, थिरको जलकण, छेड़ो कोयल मंजुल तान,
उषा लुटाओ स्वर्ण; निर्झरो, झरने दो गिरिवर से गान।
किरणो, कण-कण पर फैला दो अपना सुखद सुनहला जाल,
चमको ओस; चूम लो, अलियो, चुपके से फूलों के गाल।

मचलो मलयानिल, शाखाएँ हिला पल्लवों की वन में,
वनदेवी गूँथो वनमाला हरियाली के आँगन में।
फूलो फलो जगत् के कण-कण, मंगलमय हो तुम्हें वसंत;
पर, क्यों छेड़ जगाते हो इस उर के सुप्त उसास अनन्त।
रहें सुखी, जो सुखिया हों, पर, करें न दुखिया का उपहास;
व्यथित हृदय की करुण सिसक पर हँसे न जगका विभवविलास!
ऐ उदार संसार, न बिखरा इन 'दो बूँदों' पर यौवन,
जिन्हें दुखी की दो आँखों ने बना रखा 'कोने का धन'!"

❀ ❀ ❀

अस्थिर अभिमान

⊛

तुमने समझ अन्य कुसुमों से
बढ़कर मुझे सुगंध-निधान,
तोड़ वृक्ष से ले निज कर में,
दिया प्रेम का दुर्लभ दान।

फिर जब तुमने बड़े हर्ष से
सूँघा मुझे चकित चितचोर।
तब मैंने सगर्व नयनों से
देखा उन कुसुमों की ओर।

किंतु, देखना पड़ा उसी क्षण
उस महान सुख का अवसान,
स्वार्थ सिद्ध कर तुमने मुझको
फेंका, किया घोर अपमान।

जब मैं गिरा भूमि पर, छाई
मेरे कोमल तन पर धूल,
अट्टहास तब घृणापूर्ण कर-
उठे सभी उस तरु के फूल।

⊛ ⊛ ⊛

अछूत

⊛

एक दलित कण मैं भी हूँ माँ–
के बिखरे वैभव का,
घोंट दिया है गला घृणा ने
जिसके मृदु कलरव का।

इस छोटे-से जीवन में था
माँगा कितनी बार
चरणों की रज में मिल-जुलकर
रहने का अधिकार।

तिरस्कार से अधिक न मुझको
दे पाया संसार;
कैसे हो विश्वास करेगा–
वही मुझे अब प्यार ?

जीवन-भर पाली थी मैंने
आज लालसा खोई;
हृदयहीन जगवालों में से
मुझे न छूना कोई!

⊛ ⊛ ⊛

आँसू

⊖

विरह-स्वाति के बिंदु, न ढल को,
बने रहो अनमोल !
कौन तुम्हें भरने आयेगा
हृदय सीप-सा खोल ?

कभी किसी वत्सल अंचल ने
लिया तुम्हें यदि पाल,
किन दुर्लभ निधियों को पाकर
होगे, लाल, निहाल ?

सौदागर पायेगा, घर-घर
दिखलायेगा खोल ;
पथ-पथ होगी परख, लगेगा
गली-गली में मोल !

बन जाओगे, सरल स्नेह इस–
उर के, कठिन कठोर ।
हाय, जौहरी पा जायेगा
अतल व्यथा का छोर !

⊖ ⊖ ⊖

समर्पक

कसकों के आँगन में सुख का
सार लुटाते क्यों हो ?
निधियों से धूनी इस खँडहर-
में तपवाते क्यों हो ?

अरे समर्पण के मतवाले,
करो न ऐसी भूल ;
कहाँ कलेजे की ज्वालाएँ,
कहाँ प्रेम के फूल !

लाल किसी कोमल अंचल के,
अंतस्तल के बाल,
ये रसवाले किसी रसिक की
झोली करें निहाल !

अरे, जलन से कोमलता का
मेल मिलाते क्यों हो ?
मेरे ज्वालामुखी हृदय पर
फूल चढ़ाते क्यों हो ?

अपराधी के आँसू

मेरे भग्न हृदय से मिलकर
बिखर गये कितने शृंगार,
कितने हृदय-सीप के मोती
मिले धूल में बारंबार!

बनकर बिगड़ गये पल-भर में
कितनी पलकों के संसार,
अवनी के अंचल में मैंने
बाँध दिये कितने अपकार!

आह, उपेक्षा की ज्वाला से
कितने हृदय जलाये हैं,
तब पछतावे के दो आँसू
संचित होने पाये हैं!

चरणों का कर लेने दो, अब
तो, आराध्य, इन्हें अभिषेक;
'क्षमा' तुम्हारी एक, दुखी के
धो डालेगी दोष अनेक।

अतृप्ति

विवश करुणा, नयनों से ढलक, धूल में मिल जाती थी मौन,
हुआ था हृदयहीन संसार, हृदय की व्यथा पूछता कौन ?
लबालब लहराती थी सुधा, रखा था प्याला मेरे पास ;
नहीं था पीने का अधिकार, ले रही थी अतृप्ति उच्छ्वास !
छिपा था प्यालेवाला कहीं, बुलाया, बरसों देखी राह ;
बिना पाये उसका आदेश अधर कुछ सकुचाते थे, आह !
न आया पल - भर निष्ठुर यहाँ, तनिक - सा दे जाता संकेत ;
लिपट जाते प्याले से अधर, तृप्ति से हृदय, अधीर, अचेत !
अभागे अंतस्तल से आज उठ गया ममता का विश्वास ;
उसी आशा का अंचल लुटा, पला करती थी जिसमें प्यास ।
अरे, प्यालेवाला अब व्यर्थ कराने आया क्यों उपहास ?
तरसती प्यास, सिसकता हास, उड़ा ले गये कहीं उच्छ्वास !
तृप्ति को मिला न आश्रय यहाँ, पिलानेवाला हुआ हताश ;
हुई अभिलाषा - अंजलि लीन, मिट गई, हाय, हृदय की प्यास !
अरे अंतर् की अमर अतृप्ति ! अंत तक रहा करुण कंपन !
इसी की एक अधूरी आह छोड़कर चल देगा जीवन !

संकोच

जीवन के उस प्रथम पुलक को
बीत गये कितने मधुमास !
मेरी दो बूँदों का करता
है जग का पतझड़ उपहास !

पास न आना, देव, दीन का
दलित हृदय सकुचाता है ;
प्राणों का उपहार अछूता
दुर्दिन में रह जाता है।

पलकों ही में मँडराते हैं
ये पलकों के सजल उसास ;
चरणों पर वैभव ढलकाने
कौन जाय प्रियतम के पास ?

हा, संकोच ! छलकती निधि की
है वह सब उमंग खोई ;
निर्धन के निरीह नयनों से
अर्घ्य न अब चाहो कोई !

दीन

❁

जो उदार हो, बने उदधि वह—विस्तृत नील-प्रदेश,
अथक ऊर्मियों से असीम का दे प्रतिपल संदेश।
जो हो करुण, बने वह उजड़े वन में सहृदय ओस;
सजलालिंगन से दे पीले पत्तों को संतोष।
जो पावन हो, बने जाह्नवी या यमुना की धार;
चलते-चलते, जाय पापियों का करता उद्धार।
जो अमोल हो, बने स्वातिकण, सीपी में पलजाय;
पैनी—पानी के परखैयों की—आँखें ललचाय।
मैंने तो सारी इस जीवन की अभिलाषा खोई;
मैं हूँ दीन, न मेरा आना-जाना जाने कोई।
भूले-भटके किसी जलद का बनूँ बूँद-भर जल मैं;
बरसों की प्यासी सिकता पर पड़कर सूखूँ पल में।

❁ ❁ ❁

दुःख

❀

(१)

केवल तुम्हीं अकेले हो !

किसी अतल में वड़वानल - से
छिपे - छिपे गंभीर गूढ़तम
दाह दबाये अन्तर् - तम का ,
पीते हो चुपचाप अश्रु तुम !

अस्थिरता की पलकों - सी ये
लघु - लघु लहरें इस संसृति की
एक - एककर उठती - गिरती
ऊपर - ऊपर बह जाती हैं ,

छू पाती हैं कहाँ तुम्हारे प्राण ?

हे अविकार विकार !
वेदना के हे चरम निधान !

जग के मिलन - महोत्सव में तुम
विधवा - से नीरव, अज्ञात,
शिला हृदय पर रख, कोने में
बैठ काट देते हो रात !

इस लालायित - से त्रिभुवन में
विवश वीतरागों - से अविचल
प्रतिपल तुम्हीं अकेले हो !
इस संमिलनशील वसुधा पर ,
संगी-साथी-हीन विरह - से ,
केवल तुम्हीं अकेले हो !

(२)

हे अक्षय !
हे अखंड ! कण - कण में बँटकर
सुख की भाँति न तुम पल-भर में
हो जाते हो कभी पराये ।
सदा हृदय से लगे
निभाते हो अपनापन
अहो अजरामर आलिंगन !

❁ ❁ ❁

सुख विस्मृति, मुसकान व्यंग्य ,
क्रंदन असफलता ,
पागलपन है उपालंभ ,
अभिशाप विकलता ,

जग है जग का त्रास,
और जड़ता है जीवन,
छलना है संगीत,
जरा का पथ है यौवन—
मुझे जताता रहता है यह
प्रति-दिन — प्रति-क्षण
अहो, तुम्हारा मौन,
तुम्हारा नीरव इंगित!
हे निःशंक, हे निर्भय!
हे अक्षय!
रुँधी आह, सूखे आँसू की
सकल सृष्टि पर रख पदतल,
लक्ष्यहीन पागल-से बन, तुम
यों ही अनायास अविचल,
अखिल विश्व को एक शून्य में
प्रथम विसर्जित कर आये हो,
फिर इस अंतर् में आये हो!
हे उन्मत्त! हे निर्दय!
हे अक्षय!

कणिकाएँ

(कुछ बिखरे भाव)

मेरी व्यथा-कथा मत पूछो, वह कहने की बात नहीं;
आशाओं के 'आदि, अंत' का अंतर मुझको ज्ञात नहीं!

❖ ❖ ❖ ❖

मोती के पारखी! आँसुओं की दुनिया है अलग, अमोल;
उर का एक-एक पीड़न है एक-एक कणिका का मोल।

❖ ❖ ❖ ❖

'कुछ' खोना सीखा करता है जहाँ हृदय 'सब-कुछ' खोकर;
होते हैं आरंभ वहीं से मेरे नयनों के निर्झर।

❖ ❖ ❖ ❖

क्यों एक-साथ जीवन में उमड़ी स्मृतियाँ इतनी हैं;
घन घुमड़ रहे प्राणों में, आँखें आषाढ़ बनी हैं।

❖ ❖ ❖ ❖

तुम पर वार चुका हूँ कितने सुंदर सपने अपने;
कहीं न इस सर्वस्वहीन के बनजाना तुम सपने।

❖ ❖ ❖ ❖

हृदय दुखाकर कहीं निमिष में छिप जाता है बिना प्रयास ;
मेरा दुख भी 'अपना' बनकर कब रहता है मेरे पास।

❖ ❖ ❖ ❖

'फूले-फले आज के' चुनकर जब मालिन घर लाती है ;
पथ पर 'कल के हरे-भरों' को चूर-चूर कर आती है।

❖ ❖ ❖ ❖

आदि-अंत तो दूर, कहीं मृगजल का भी आसार नहीं ;
जीवन के इस मरु में मुझको भ्रम का भी आधार नहीं।

❖ ❖ ❖ ❖

तम-मय उर आलोकित करने पागल जिन्हें बुलाते हैं ;
दीपक बनकर आनेवाले, दावानल बन, जाते हैं !

❖ ❖ ❖ ❖

व्यथितों के उच्छ्वासों का घन आज श्याम प्यारा बन जाय ;
मुझे वेदना-वंशी का स्वर यमुना की धारा बन जाय !

❖ ❖ ❖ ❖

मरु की ओर, क्षीण निर्झर बन, चाहे बरबस बहना ;
पर, कवि, सुखके श्रवणों से तू मर्म-व्यथा मत कहना।

❖ ❖ ❖ ❖

पलकें भीगीं नहीं, न जिसके उठी हृदय में हूक कभी;
उसके लिए सदा त्रिभुवन में सोते सुख की नींद सभी।

❖ ❖ ❖ ❖

मैं अभाव की अमर अमावस का चिरवंचित एक चकोर;
आशा के तारे करते हैं व्यंग्य-इशारे जिसकी ओर।

❖ ❖ ❖ ❖

अब सर्वस्वहीन कुटिया की मलयपवन को सुध आई!
क्षीणहृदय दीपक दुखिया के! चलो, बुझो तुम भी भाई!

❖ ❖ ❖ ❖

जो हो अमर, वही पीड़ा है; जो अक्षय, वह आँसू, आह;
जिसे न जाने जग, वह दुख है; जो हो विफल, वही है चाह!

❖ ❖ ❖ ❖

अगणित गाँठें लगा मौन की अगम उदासी के अंचल में;
हृदय, बाँध रख अपनी 'पीड़ा',—खो न जाय सुख की हलचल में।

❖ ❖ ❖ ❖

निर्जन वन की गहन निशा में लुटे पथिक-सी, है जो मौन,
उस मेरी गंभीर व्यथा के अश्रु पोंछने आवे कौन?

अध्यात्म

आह्वान

मेरे अंतर् के मंदिर में आज बजा 'आह्वान', सखी !

पुण्यपर्व, जीवन का शुभदिन, आया सहसा मेरे द्वार ;
प्राणों में प्रकाश का उमड़ा आज अचानक पारावार ।
छिन्न हुआ जड़ता का बंधन, वैभव का व्यवधान, सखी !—मेरे०

शत-शत वन-गिरि लाँघ, विजित कर अगणित बाधा-संकट-क्लेश,
आ पहुँची आराध्य देव का लेकर उषा दिव्य संदेश,
पदचिह्नों से मुझे लक्ष्य-पथ का देने संधान, सखी !—मेरे०

अब न एक क्षण का विलम्ब भी यहाँ सहेंगे आकुल प्राण,
अब न विवशता के बंधन में रुद्ध रहेगा जीवन-गान ;
वहाँ पहुँचकर विकसित होगी मुक्तिभावना म्लान, सखी !—मेरे०

जो था आदिम स्रोत, वही है जीवन की प्रेरक पतवार,
व्यथित हृदय का वही विसर्जन में होगा अंतिम आधार ;
भूत, भविष्यत्, वर्तमान का स्वामी वही समान, सखी !—मेरे०

निराभरण की अंतिम निधि हैं केवल ये प्रसून मृदु-वास,
और असंबल कठिन पंथ का है पाथेय—'अचल विश्वास' ;
मैंने तो अपने ही बल पर किया महाप्रस्थान, सखी !—मेरे०

केवल सुमन नहीं, जीवन भी हो उत्सर्ग वहाँ एकांत ;
जग का यह संघर्ष, विभव का भीषण कोलाहल हो शांत ।
नवजीवन की प्रथम किरण हो मेरा जीवन-दान, सखी !—मेरे०

आह्वान

मेरे अंतर् के मंदिर में आज बजा 'आह्वान', सखी !

पुण्यपर्व, जीवन का शुभदिन, आया सहसा मेरे द्वार ;
प्राणों में प्रकाश का उमड़ा आज अचानक पारावार ।
छिन्न हुआ जड़ता का बंधन, वैभव का व्यवधान, सखी !—मेरे०

शत-शत वन-गिरि लाँघ, विजित कर अगणित बाधा-संकट-क्लेश,
आ पहुँची आराध्य देव का लेकर उषा दिव्य संदेश ,
पदचिह्नों से मुझे लक्ष्य - पथ का देने संधान, सखी !—मेरे०

अब न एक क्षण का विलम्ब भी यहाँ सहेंगे आकुल प्राण ,
अब न विवशता के बंधन में रुद्ध रहेगा जीवन - गान ;
वहाँ पहुँचकर विकसित होगी मुक्तिभावना म्लान, सखी !—मेरे०

जो था आदिम स्रोत, वही है जीवन की प्रेरक पतवार ,
व्यथित हृदय का वही विसर्जन में होगा अंतिम आधार ;
भूत, भविष्यत् , वर्तमान का स्वामी वही समान, सखी !—मेरे०

निराभरण की अंतिम निधि हैं केवल ये प्रसून मृदु - वास ,
और असंबल कठिन पंथ का है पाथेय—'अचल विश्वास' ;
मैंने तो अपने ही बल पर किया महाप्रस्थान, सखी !—मेरे०

केवल सुमन नहीं, जीवन भी हो उत्सर्ग वहाँ एकांत ;
जग का यह संघर्ष, विभव का भीषण कोलाहल हो शांत ।
नवजीवन की प्रथम किरण हो मेरा जीवन - दान, सखी !—मेरे०

प्रार्थना

प्राणों की वीणा पर छेड़ो
ऐसा एक महासंगीत,
लीन तुच्छ तानें जीवन की
हों जिसके व्यापक स्वर में।

जिस में मलिन प्रभा लघु दीपों-
की विलीन हो अपने आप,
ज्योतिर्मय ! आलोक निरंजन
भर दो ऐसा इस घर में।

एक अमर सौंदर्य बसा दो
मेरे नयनों में, उर में,
क्षणिक रूप के कण खो जावें
जिसकी छवि के सागर में।

जिसमें क्षुद्र कामनाएँ निज
करूँ विसर्जित मैं सारी,
ऐसा महानुराग जगा दो
मंगलमय ! इस अंतर् में।

कस्तूरीमृग

❁

क्यों वन-वन भटकाने आये यौवन के ये मादक मास !
उदित हुआ तेरे जीवन में क्यों यह निष्ठुर तीव्र सुवास !

जो 'रहस्य' है निहित तुझी में,
जो तेरे 'गोपन' का धन,
पाने को संधान उसी का
'प्रश्न' बना तेरा जीवन।

जब तक वधिक न पता बतावे, क्या तुझको सारा संसार—
समझा सकता है कह-कह कर "तू ही है सुगंध-भांडार !"

जिस दिन पता चलेगा इसका,
जिसपर भस्म रमाई है,
भ्रांत, उसी दिन देखेगा, यह—
संपद् हुई पराई है !

भीतर से भी खो देगा तू अपने जीवनधन को, आह !
तुझे किसी दिन ठग लेगी यह बाहर से पाने की चाह !

❁ ❁ ❁

स्वरलहरी

तुम्हें रिझाने का जीवन में और नहीं कोई उपचार,
केवल मेरे 'अपने' स्वर को करते हो, प्रियतम, तुम प्यार।
वह भी कहाँ मुक्त प्राणों से अर्पित होने पाता है?
जहाँ-जहाँ जाता है, उसका 'अपनापन' लुट जाता है।
बालारुण की लाली में, तरु-तले, मचल जब मेरे प्राण—
बिना ताल-स्वर, सरल कंठ से, सहज, छेड़ देते हैं तान,
एक-साथ सब विहग वृक्ष के कह उठते हैं बिना विचार—
"यह तो है संगीत हमारा, इस पर तेरा क्या अधिकार?"
गिरि के चरणों का आश्रय ले निर्भय होने जाता हूँ,
तोड़ विश्व के बंधन, ज्योंही मुक्त रागिनी गाता हूँ,
सहसा, निर्झर कह उठता है किसी गूढ़ शंका के साथ—
"यह तो मेरे उर का स्वर है, कैसे आया तेरे हाथ?"
उर में गहन निराशा ले मैं जब धीरे-धीरे जाकर
करुण-गभीर राग गा उठता हूँ विस्तृत सागरतट पर,
उदधि, उदासी में जीवन का जो गंभीर सहारा है,
उसकी लहरें भी कह उठतीं—"यह तो गान हमारा है!"
हो जाते हैं एक बूँद में विचलित सब गाने वाले;
कहाँ पिला पाता हूँ तुमको स्वरलहरी भर-भर प्याले!

त्रिलोचन

◎

कालकूट विष कुटिल एक में,
अमृत एक में सरल, सघन,
एक नयन में मरण तुम्हारे
एक नयन में है जीवन,
सृजन निखिल द्वंद्वों का करते
खेल - खेल में युग - लोचन।

एक पलक में मंथर निशि, दिन-
एक पलक में चपल - चरण;
क्रीड़ा का क्रम—सृजन-विसर्जन
प्रचलित है प्रति-दिन प्रति-क्षण,
कितना अस्थिर है, लीलामय,
पलकों का उत्थान - पतन!

मौनालाप, प्रकाश - अँधेरा,
राग - विराग, जरा - यौवन,
तृप्ति - अतृप्ति, निराशा - आशा,
रुदन - हँसी, विस्मरण-स्मरण,
सुख-दुख, हानि-लाभ, यश-अपयश,
विजय - पराजय, जन्म-मरण,

आँख मिचौनी खेला करते
प्रतिपल चपल मुक्ति - बंधन,
जाग्रत और सुषुप्त विश्व के
खुला - मुँदा करते लोचन,
जब तुम एक - एक कर क्रमशः
करते आवृत - विवृत नयन।

इस प्रतिदिन की लीला पर ही
मोहित होकर जड़ - चेतन,
हाय, लुटा देते हैं पल में
युग - युग का संचित साधन;
सहज मूँद लेते हो तब तुम
एक साथ दोनों लोचन।

खुलना - मुँदना भूल अधखुले
रह जाते जग के लोचन,
रुक जाती द्वंद्वों की लीला,
स्थिर हो जाता है त्रिभुवन,
युग - युग की समाधि से ऋषि-सा
जगता जब तीसरा नयन;

सूर्य - चंद्र - दीपक बुझ जाते,
तम - प्रकाश खो जाते हैं,
लीन स्वप्न सुख - दुख के जाग्रति
के लय में हो जाते हैं,
नभ - भूतल की सीमारेखा
ढँक लेता है महामिलन।

द्वेष नहीं है, प्रीति नहीं है,
संशय नहीं, प्रतीति नहीं है,
अनय नहीं है, नीति नहीं है,
जन्म - मरण की भीति नहीं है,
जहाँ ढालते हो 'अभेद' के
प्याले में मादक चितवन;

तृप्ति नहीं है, प्यास नहीं है,
जहाँ भोग या त्याग नहीं है,
शाप नहीं, वरदान नहीं है,
'भैरव' नहीं, 'विहाग' नहीं है,
वहीं झूम उठता है त्रिभुवन;
आह तुम्हारा संमोहन!

स्मित में, आँसू में, विस्मृति में
भर-भर मैं प्राणों के छंद,
सुख में, दुख में, मादकता में
तव छवि पर वारूँ सानंद;
मेरे अंतर् के त्रिभुवन के
अयि त्रिकाल सहचर त्रिनयन!

❁ ❁ ❁

तुम से

⊙

सहमे अलि से कली—लजीली—
का पहला इंगित पाना,
चातक की पहली आकुलता,
कोयल का पहला गाना,
छोटे-से तारिका-हृदय का विस्तृत नभ में सकुचाना,
हृदय खोलकर भी सीपी का महासिंधु में शरमाना,
लगते-लगते कूल तरी का
फिर लहरों में वह जाना,
नये अधर का सुधापात्र को
छूते-छूते रह जाना,
उषाकोष का खुलते-खुलते मुँदना, फिर लय हो जाना,
सागर में लहरों का शशि को छूते-छूते खो जाना,
इन सब में क्यों वही पुराना
मेरा भाव समाया,
तुम में मिलने के पहले मैं
जिसे छोड़कर आया।

⊙ ⊙ ⊙

जीवनदीप

⊙

जिसकी एक झलक पातीं, तो
रवि-शशि की पलकें झुक जातीं,
पूर्ण पयोनिधि की मादकता
मधु की दो लघु बूँदें पातीं,

बिखरी वीणाएँ अंबर में
महामिलन का स्वर भर आतीं,
एक - एक शतदल के उर में
लाख - लाख आँखें खुल जातीं,

वही प्रकाश, इसी में छिपकर,
चुपके - से जब देते हो भर,
मेरा लघुतम जीवन - दीपक
कह उठता है विस्मित होकर—

"क्या इसलिए कि फैला दूँ मैं
कण-कण में प्रकाश की प्यास,
लघुतम स्नेहपात्र में, प्रियतम,
भर देते हो परम प्रकाश ?"

⊙ ⊙ ⊙

एक किरण

⊙

पतझड़ के पदचिह्नों पर वह
एक मलय का झोंका था,
जिससे यह उजड़ा उपवन भी
अमर वसंत-विकास बना।

हे असीम! सहसा सीमा का
ज्योंही घूँघट सरकाया,
स्मित की एक सरल झाँकी में
मेरा रोदन हास बना।

भूले-भटके ढाल गये जो
तप्त हृदय-प्याली में तुम,
आह तुम्हारी एक बूँद में
मेरा जीवन प्यास बना!

एक इशारे में प्राणों ने
पागल बन तोड़े बंधन;
एक किरण छू गई तुम्हारी,
मेरा तिमिर प्रकाश बना!

⊙ ⊙ ⊙

अज्ञात

अंग-अंग में चुभते हैं जब स्वार्थी जग के तीखे शूल,
कौन हृदय की झोली में भर देता है अपने मृदु फूल?
जब आनंद, करुण जगती के अश्रु बहा ले जाते हैं,
किसके मधुर अधर प्राणों में मिल-मिलकर मुसकाते हैं?
जब विरक्ति के सूनेपन से मेरा जी घबराता है,
कौन प्रेमवीणा के स्वर से फिर से घर भर जाता है?
वैभव के ठुकराने पर जब ठुकराता है सब संसार,
किसके अंचल का आलिंगन पाता है तब मेरा प्यार?
जब मैं घोर निराशातम में निराधार सोता हूँ मौन,
आशा की हलकी किरणों से करस्पर्श करता है कौन?
मेरे ऊबे उर से धीमे स्वर में सुनकर "परिवर्तन!"
कौन पुरातन रंगमंच पर करता है नूतन नर्तन?

उत्सर्ग

⊛

(१)

फूल चमेली के, चंपा के,
 रजत-स्वर्ण बन जाते हैं,
जब गुरुजन के वत्सल युग-कर
 वरद वारि बरसाते हैं।
 निधि-ड्योढ़ी पर न्योछावर,
 नत होते मुकुट अनेक;
 जीवन के उस स्वर्णकाल में
 होता है अभिषेक।
उसे जग कहता है अभिषेक,
बहुत महँगा है वह अभिषेक,
 पर, साधना हृदय की है यह
 मूल्यहीन, लघु, एक!

(२)

नयन तक आ जाता है उमड़
 हृदय का पागल पारावार,
न जाने क्यों मोती-सी मौन
 ढलकतीं फिर भी बूँदें चार;

निरंतर उन बूँदों के हाथ
बिका - सा रहता है संसार,
किसी को उस मधु-ऋतु में हृदय
किसी का करता है जब प्यार;
विश्व कहता है उसको प्यार,
अलभ है, ऊँचा है वह प्यार,
और बहुत नीचे हैं मेरे
मानस के उद्गार।

(२)

आकुल जीवन की ये शत - शत
धाराएँ सस्वर अनजान,
सत्वर आज चली आती हैं,
रुकती नहीं, आह, नादान;
"करुणामय - चरणों में इनका
लय होने दो प्राणाधार !"
—यही कामना शेष रही है
और यही वांछित अधिकार।
कहे कुछ भी सारा संसार;
अकिंचन का है यह उपहार।
न इसमें गुरुता और न प्यार;
करोगे क्या न इसे स्वीकार ?

आकुल स्वागत

⊙

फूलों की पलकों की कातर बूँदों की सुन मूक पुकार,
किरणों के पथ से वसुधा पर जब उतरे तू प्राणाधार,
अखिल अलस आँखें जगती की पल-भर में खुल पड़ें अजान,
विस्मित खग गा उठें अचानक डाल-डाल पर मंगल-गान,
घबराहट, उलझन, उतावली करे मुझे भी अधिक अधीर,
बिखर जायँ भावों के अक्षत, फैले नयनकलश का नीर;
मैं समझूँ तू आया, आया, वह आया, आ गया समीप!
तेरे स्वागत की हलचल में बुझ जाये यह जीवनदीप!
उस निशांत में, जब हे सुंदर, आ पहुँचे तू सचमुच पास,
केवल एक उसास छोड़ इस बुझे दीप का हृदय हताश,
मलिन धूम की क्षीण शिखा के दीन वेश में अंतिम बार,
तेरे चरण चूम, घन में मिल, हो असीम में एकाकार!

⊙ ⊙ ⊙

जीवननायक से

तुम मिल सुख - दुख के श्वेत - श्याम पुष्पों में
निज श्री से गूँथो सघन सदा यह जीवन ;
बन कभी हास - द्युति कंचन - सा चमकाओ ,
दो मौक्तिक - आभा कभी इसे आँसू बन ।

उज्ज्वलतर कर दो विरहताप बन इसको ,
दो इसे, मिलनसुख बन, मधु का अक्षय धन ;
प्रारंभ करो मृदु 'जन्म'-प्रभात - किरण बन ,
पूर्णत्व इसे दो 'मरण' - निशा बन भीषण ।

भीतर, बाहर से, सकल दिशाओं से हो
यह जीवन तुम से निविड़ - व्याप्त, जीवनधन !
अनुभव, चिरसहचर, करता रहे तुम्हारा
तन्मय, अबाध यह अविरत प्रतिपद, प्रति-क्षण ।

हो पतन सह्य, यदि मिले तुम्हारी करुणा ,
उत्थान मधुर हो, यदि तुम दो प्रोत्साहन ;
पथ—कंटक, दूर्वा, दोनों का—सुखकर हो ,
यदि लक्ष्य-क्षितिज तुम करो प्रकाशित ध्रुव बन ।

अकृपण याचना

⊙

मेरे प्रभु, तुम मेरे बनकर, केवल मेरे मत बन जाओ ।
शशि को जो शीतलता दी, दो मेरे उर के स्नेहकणों को ,
वही ओस की शत-शत बिखरी बूँदों में वितरित कर आओ । मेरे०
जो द्युति अरुण किरण को दी, दो मेरे प्राणों के प्रकाश को ,
वही जगत् के द्वार - द्वार के दीपक - दीपक में चमकाओ ।
मेरे प्रभु, तुम मेरे०
जो दृढ़ता हिमगिरि को दी, वह संकट में मेरे मन को दो ,
एकाकी मानव - हृदयों को वह विपत्तियों में सिखलाओ ।
मेरे प्रभु, तुम मेरे०
जो श्री गृहिणी के गृह को दी, दो वह मेरे भाव-कोष को ,
वसुधा की वंचित विभूतियों के कण-कण पर वह बिखराओ ।
मेरे प्रभु, तुम मेरे०
महासिंधु को जो गभीरता दी, वह मेरे चिंतन को दो ,
वही साधना के सब नव-नव मानव-यत्नों को दे आओ ।
मेरे प्रभु, तुम मेरे०
तुम आशा से अधिक महत् धन, हृदय अकेला चिरदरिद्र यह ,
सह न सकेगा, भर न सकेगा; जाओ जग-भर में बँट जाओ ।
मेरे प्रभु, तुम मेरे०

⊙ ⊙ ⊙

विराट्

तेरी नयन - पुतलियों से चिरसघन नीलिमा लेकर
छाया रहता मरण गगन - सा अवनी - से जीवन पर।
इंगित पर विद्युत् - धारा - से तेरे, बारंबार
सृजन - प्रलय अपनी लीला का करते हैं विस्तार।
एक निमिष तेरे विराग का—अखिल - विश्व - निर्वाण !
तेरी स्मृति का एक पलक—जग का नूतन निर्माण !
तेरा निष्ठुर व्यंग्य—जीर्ण तरु पत्रों से होते खाली !
तेरा बालविनोद—नवांकुर फिर लाते हैं हरियाली !
एक अंश तेरी विभूति का—मातृ - हृदय की पय - धारा,
वहीं दूसरी दिशा—सुखाता मरघट जीवनरस सारा !
जन्म - मरण - सुख - दुख द्वंद्वों का ले आनंद अनूप,
विश्व - निवास, मनुजता तुझ में पाती पूर्ण स्वरूप !
स्मित में इंद्रधनुष, करुणा में घन, प्रेमल-ता में निर्झर,
तारक तेरे पलक - प्रकंपन में, वत्सल-ता में अंबर ;
ममता में तरु, निर्ममता में वज्र, गहनता में सागर,
तेरे रोम - रोम में जग है, जग में तू है अखिलेश्वर !

पीड़ित की पूजा

जग के अगणित आघातों के क्षत-चिह्न बने जो इस उर में ,
मैं उन 'दीपों' में स्नेह ढाल करता प्रकाश अंतर् - पुर में ।
जग से वर-सा पाया मैंने अक्षय-अभाव का जो 'आसन' ;
मैं उसे बिछा अपने प्रभु का पथ देखा करता हूँ क्षण-क्षण ।
कर मूक रुदन से 'आवाहन', गोपन - चिंतन से आत्मार्पण ,
रखता 'नैवेद्य' वेदना का, आहत भावों के सजा 'सुमन' ।
मैं ऋणी प्रहारों का हूँ जो उर से उच्छ्वास उठाते हैं ;
बन 'धूप' अदृश्य, लीन नभ में प्रभु के जो होने जाते हैं ।
जो दुख का कालकूट मैंने उपहार जगत् से पाया है ,
प्रभु के 'प्रसाद' की भाँति उसे प्राणों का पेय बनाया है ।
उपकरण अगोचर, रुद्ध व्यथा है, मेरी पूजा अलख अभी ;
पर, भय है, सारे बंधन उर के सहसा टूट पड़ें न कभी ।
चिरसंचित, प्रभु के संमुख क्षण में कहीं न उमड़ पड़े, दृग्-जल ,
करुणा - कालिंदी बनकर धो दे कहीं न उनके चरण विमल !
तब, हाय, विश्व से छिप न सकेगा—मेरा उनसे है नाता !
फिर, मुझे न देगा निष्ठुरता का दान, जगत्—मेरा दाता ।

जीवन - संगीत

चित्रकार—श्रीरामगोपाल विजयवर्गीय, जयपुर (राजस्थान)
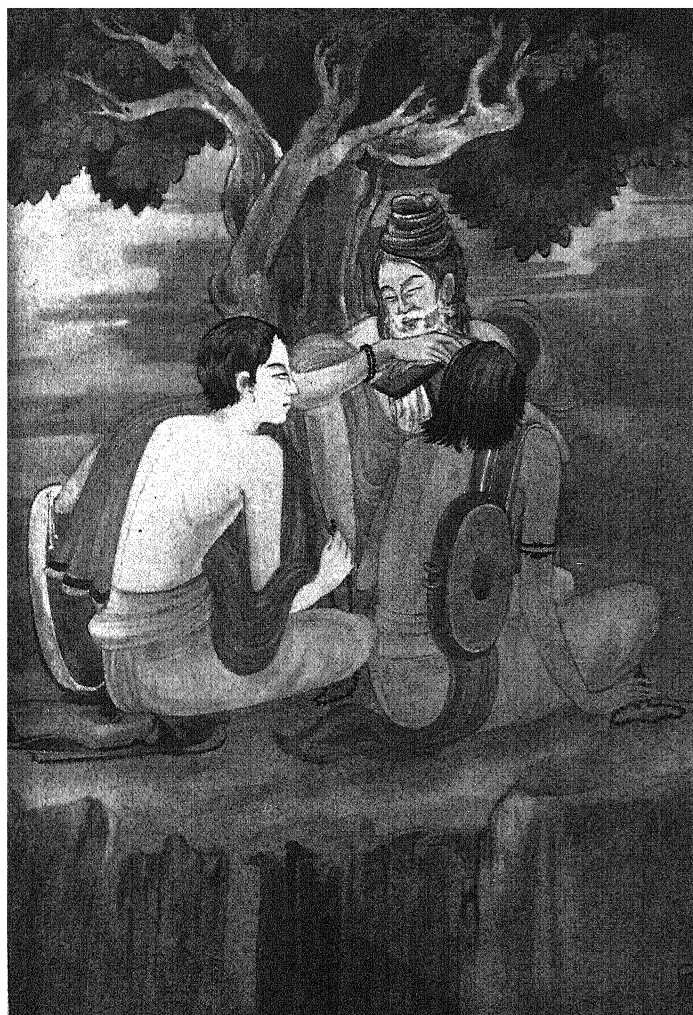
तेरी स्मृति के उषा - लोक में पाते पांथ बसेरा। (पृष्ठ १७२)

बसेरा

❀

तेरी करुणारुण असीम छवि
देख हृदय - अंबर में,
पाती, जीवन के द्वंद्वों की-
गति, विराम पल - भर में।

तेरे 'चिंतन' के प्रभात में
बन जाता जीवन निष्काम,
तेरे 'अनुभव' की संध्या में
प्राणों को मिलता विश्राम।

दुख की निशा और सुख का दिन,
दोनों से थककर संसार,
तेरे चरणों में लेता है,
रुक कर, उर का भार उतार।

सघन स्वप्न तेरे अंचल का—
जग का 'साँझ - सवेरा'।
तेरी स्मृति के उषा - लोक में
पाते पांथ बसेरा।

❀ ❀ ❀

निवेदिताएँ

(कुछ बिखरे भाव)

तेरा स्वर्ण - मुकुट बनता है जब प्रभात का सुख सारा,
चरणों में रजनी का दुख चढ़ जाता बन अंतिम तारा।

❖ ❖ ❖ ❖

दूर क्षितिज पर जब से तेरा मंदस्मित, अनंत ! देखा,
प्रति - क्षण बढ़ती ही जाती है जीवन की सीमा - रेखा।

❖ ❖ ❖ ❖

आदि - काल से विश्व - वेणु के प्राण - रंध्र में तेरा श्वास;
फूँक रहा है सप्त स्वरों का अंतहीन जादू सोल्लास।

❖ ❖ ❖ ❖

सागर ! सभी सीपियों को तू स्नेह किया कर एक-समान;
स्वाति न जाने किस में पड़ कब दे जावे तुझको संमान !

❖ ❖ ❖ ❖

देखा - भाली में तू लेना - देना अगर भुलायेगा;
उठ जायेगी हाट, गाँठ में पछतावा रह जायेगा।

❖ ❖ ❖ ❖

बिठा प्रेम के अमर लोक में, नश्वर में अविनश्वर देख;
अंतर् - तम के प्याले में भर, एक बूँद में सागर देख!

❖ ❖ ❖ ❖

ठहर न जाना, पथिक, समझकर कहीं इसे यात्रा का छोर;
जग तो केवल एक इशारा ही है तेरे पथ की ओर!

❖ ❖ ❖ ❖

आज करूँगा इन त्रुटियों से पूर्ण तुम्हारा आराधन;
गान मधुरतर हो उठता है तान टूटने से क्षण - क्षण।

❖ ❖ ❖ ❖

बना जगत् के लिए पहेली तेरे कारण यह जीवन,
अब भी इसके लिए पहेली बना रहेगा जीवनधन!

❖ ❖ ❖ ❖

एक झलक में तन्मयता की गोद कभी भर जाते हो;
कभी तुम्हीं उत्कंठा - पथ पर, अवगुंठन बन, आते हो!

❖ ❖ ❖ ❖

आँखों को क्या करूँ! भले ही कहो इसे तुम पागलपन!
इनके आगे आते ही 'कण' बन जाता है 'सिंधु' गहन!

❖ ❖ ❖ ❖

हृदय जहाँ एकांत समझ कर, प्रियतम, तुझे बुलाता है,
अखिल विश्व को, तू अपने में छिपा, वहीं ले आता है।

❁ ❁ ❁ ❁

तेरी स्मृति जब मेरे उर के तारों को छू जाती है,
स्वर की एक हिलोर विश्व के प्राणों में लहराती है।

❁ ❁ ❁ ❁

सागर जिसका चरणोदक, यह नभ करुणांचल - छाया है,
कवि ने 'अनुभव' की सीमा में उस असीम को पाया है।

❁ ❁ ❁ ❁

सुख-दुख, जन्म-मरण के स्रष्टा! बँध तो इनके बंधन में!
ठुकरा देगा मुक्ति, न फिर रस पावेगा सूनेपन में।

❁ ❁ ❁ ❁

मेरी मौन - निशा मिल जावे तेरे नीरवता - अंबर में!
हो विलीन मेरा स्वर - निर्झर तेरे महागान - सागर में।

❁ ❁ ❁ ❁

जो इनका रस, रूप, रंग है, हास-विलास, सुवास, विकास,
अर्पित पत्र - पुष्प प्राणों के ये उसके पदतल के पास!

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९	६	सपना	सपना ?
४६	१२	निभाना ?	निभाना !
४९	२	कपालों	कपोलों
४९	६	कहने	सहने
४९	९	चिता	चिंता
५०	१	जोवन	जीवन
५३	९	कल्प समान	कल्प-समान
५५	६	कतना	कितना
६०	५	तीक्ष्णधार	तीक्ष्ण धार
६०	१३	चूर-चूर;	चूर-चूर,
६७	७	निर्मल	निर्मल,
७७	८	अंतर	अंतर्
८५	६	अलस नयन	अलस-नयन-
८८	८	पश्चाताप	पश्चात्ताप
८८	११	द्रवति	द्रवित
९५	६	—कल्याण	—कल्याण—

पुस्तके में आये, गये, पाये, लाये वहाये, पायेगा, जायेगा आदि शब्द छप गये हैं। लेखक आए, गए, पाए, लाए आदि पसन्द करते हैं और अपनी कॉपी में उन्होंने लिखा भी यही था। इसके अतिरिक्त पृष्ठ ४६, ६०, ६२, ६४, ७७, ९२, ९९, १३९, १५८, १६० आदि में क्रमशः थककर, तेजपुंज, दहलाकर–जीवननौका, स्वर्णभवन, हृदयहीन, मिलनमुहूर्त ढलको, आँख-मिचौनी, त्रिकालसहचर आदि शब्दों के खण्ड हो गये हैं। और, सर्वत्र अ, झ, ण, ल आदि मराठी अक्षरों का प्रयोग हुआ है; पर कहीं-कहीं दृष्टि-दोष से अ, झ, ण आदि नागरी के अक्षर भी छप गये हैं। आशा है, पाठक सुधार कर पढ़ने की कृपा करेंगें।